Digitized by eGangotri

हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर सीरीज

मैं मरूँगा नहीं !

[जीवन की हृदयस्पर्शी मौलिक कहानियाँ]

यशपाल जैन

•

हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय
बंबई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

••स्कैन्ड/Scanned••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकाशक
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगांव, बंबई ४

H83.1
Y1M
18610
Rs 2-8-0

पहली बार : जनवरी १९५१

मूल्य
अढ़ाई रुपये

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्नदा, सुधीर

तथा

वर्तमान पीढ़ी के उन अन्य बालकों को जो
भविष्य में हमारे बहुत-से स्वप्नों को पूरा करेंगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"म उस व्यक्ति को सुखी मानता हूँ, जो सफलता का रहस्य अपने कार्य में मानता है--बाहरी मान्यताओं, मतामतों अथवा दूसरों के पीठ ठोंकने में नहीं। जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलते हैं, जो अपना काम बड़े बेमन और लापरवाही से अथवा कहें कि बहुत ही बिगाड़ कर करते हैं। लेकिन ऐसे श्रमिक भी हैं, जो अपने काम को प्यार करते हैं और उसे सुचारु रूप से संपन्न करने में ही जीवन का सुख मानते हैं। जिस समाज में ऐसे व्यक्तियों की बहुलता होती है, वह समाज सुखी होता है। संसार को ऐसे कर्मयोगियों के प्रति अंततोगत्वा सदा न्यायवान होना ही पड़ता है, और वे कर्मयोगी धीरतापूर्वक अपने कार्यों को मान्यता और सराहना मिलने की प्रतीक्षा कर सकते हैं। श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। लोग समझते हैं, विजयश्री मानों कोई बड़े सौभाग्य की वस्तु है। विजयश्री तो वस्तुतः कर्मठजनों की अनुगामिनी है, वह उन्हीं के चरणों पर सदा लोटती रहती है।"

—एमर्सन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दो शब्द

अपनी रचनाओं के बारे में कुछ कहना लेखक के लिए आवश्यक नहीं रह जाता। उसे जितना और जो कुछ कहना होता है, अपनी रचनाओं में कह देता है। फिर भी कभी-कभी दो शब्द इसलिए कहने जरूरी हो जाते हैं कि रचनाओं को पढ़ने से पहले पाठक जान सकें कि लेखक की मान्यताएँ क्या हैं, जिनका प्रतिपादन उसने अपनी रचनाओं में किया है।

हमारे जीवन में अनेक घटनाएँ घटित होती रहती हैं। उनमें बहुत-सी ऐसी होती हैं, जिनका हमारे हृदय या मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और कालान्तर में हम उन्हें भूल जाते हैं; लेकिन कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं, जो हमारे प्राणों को झकझोर डालती हैं और हमारे हृदय पर इतनी गहरी अंकित हो जाती हैं कि हजार प्रयत्न करने पर भी हम उन्हें भूल नहीं पाते। वे हमारे जीवन और साधना का एक अभिन्न अंग बन कर हमारे साथ-साथ चलती हैं। फिर एक क्षण ऐसा आता है, जब हम उन्हें अपने भीतर ही सीमित न रखकर अपने से बाहर निकालने के लिए बाध्य हो जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे जीवन की ऐसी विवशता के परिणाम-स्वरूप जो रचनाएँ जन्म लेती हैं, वे अत्यंत सजीव और जानदार होती हैं। वे लाखों को अनुप्राणित करती हैं और साहित्य की अमूल्य निधि बनती हैं। प्रत्येक घटना कहानी नहीं होती; लेकिन जो कहानियाँ मानव-संघर्ष में से उपजती हैं और मानव की कठोर साधना के जल का बल पाकर फलती-फूलती हैं, उनमें पाठकों की हृदतंत्री को झंकृत करने की क्षमता होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कला के नाम पर आजतक जाने कितना लिखा गया है। यद्यपि हमारे स्थायी साहित्य का वह भी एक आवश्यक अंग है तथापि उन रचनाओं तथा उनके प्रणेताओं की उपयोगिता गिने-चुने लोगों के लिए ही सीमित होती है। किन्तु जिस साहित्य में मानव के हृदय का स्पन्दन और मानव की आत्मा की पुकार होती है, वह प्राणवान साहित्य सदा जीवित रहता है और सतत प्रवाहिनी गंगामाता की निर्मल जल-धारा के समान कोटि-कोटि जन के लिए जीवनदायी होता है।

प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ इस कसौटी पर कसी जायँ या कसी जाने पर खरी उतरेंगी, ऐसा दावा करना लेखक की धृष्टता होगी। हाँ, इतना वह अवश्य विनम्रतापूर्वक निवेदन कर देना चाहता है कि इस पुस्तक की अधिकांश कहानियां कोरी कल्पना के आधार पर नहीं लिखी गई हैं। उनके पीछे जीवन का यथार्थ है और हैं लेखक की अनुभूतियाँ।

अपने पिछले कहानी संग्रह 'नवप्रसून' के निवेदन में इन पंक्तियों के लेखक ने अपना यह विश्वास प्रकट किया था कि हमारा समाज मानव के आधारभूत गुणों पर टिका है। अतः अपनी रचनाओं में मानव के गुणों को प्राधान्य देना हमारे लिए अभीष्ट है। हमारा वह विश्वास आज और भी पक्का हो गया है। मानव की कुरूपता में, जिससे इस संसार का कोई भी प्राणी पूर्णतया मुक्त नहीं है, यदि हमने उसकी सुरूपता के दर्शन करने की दृष्टि नहीं पैदा की है तो हमारी रचनाएँ मानव-समाज का विशेष हित नहीं कर सकेंगी। साहित्यकार युग-प्रवर्तक होता है, युग की धाराओं को मोड़ता है। अपने राष्ट्र के असंख्य पाठकों को स्वस्थ मानसिक भोजन देने की जिम्मेदारी उसी पर होती है। यदि वह अपने इस दायित्व को सचाई के साथ नहीं निभाता तो उससे दस-पाँच या सौ-पचास पाठकों का ही नहीं, समचे समाज और राष्ट्र का अहित होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसलिए साहित्य-सृजन का कार्य किसी भी राजनैतिक अथवा अन्य वैसे ही महत्वपूर्ण माने जाने वाले कार्य की अपेक्षा कम महत्व का नहीं है। हमारे पास अपनी साधना एवं प्रतिभा का जितना भी प्रकाश है, उससे हम उसी मार्ग को प्रशस्त करें, जो सत्य है, शिव है और सुन्दर है, अर्थात् मानव के लिए हितकारी है।

कुछ लोगों का कहना है कि सोद्देश्य रचनाएँ कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं होतीं, उनमें प्रचार की गंध आती है। इन पंक्तियों का लेखक ऐसा नहीं मानता। उदाहरण के लिए युग की तत्कालीन परिस्थितियों में देश को नई दिशा देने के उद्देश्य से लिखी गईं प्रेमचन्दजी की बहुत-सी कहानियों और उपन्यासों ने जाने कितने पाठकों के जीवन में प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान की है। वे कृतियाँ आज भी साहित्य की उच्च कोटि की रचनाएँ मानी जाती हैं। अपरिग्रह और शरीर-श्रम की महिमा बताने के उद्देश्य से लिखी गईं महर्षि टाल्स्टाय की 'कितनी जमीन?' (How much land does a man need?) तथा 'मूरखराज' (Ivan, the Fool) कहानियाँ आज भी अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य की सर्वोत्तम कृतियों में गिनी जाती हैं। बेशक, हम इतना न भूलें कि इन रचनाओं में जो शक्ति है, प्राण है, वह रचनाकारों की कठोर साधना और संस्कार का परिणाम है। यदि हमारी रचनाओं के पीछे मानव-समाज को अधिक उन्नत बनाने का ध्येय परिलक्षित होता है तो उसी कारण उन रचनाओं को उत्कृष्ट न माना जाना उचित नहीं है।

इस संग्रह की लगभग सभी कहानियाँ हिन्दी के विभिन्न पत्रों में छप चुकी हैं। आज जब कि वे पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही हैं, उन पत्रों के संपादक-बंधुओं का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है, जिन्होंने उन्हें अपने पत्रों में स्थान दिया था। लेखक उन सब का आभारी है।

परम आदरणीय श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने इस पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की भूमिका के रूप में जो कुछ लिखा है, उसके बारे में कुछ कहते नहीं बनता ! यदि हमारा बस चलता तो उसे कदापि न छपने देते; लेकिन जब वह छप ही रहा है तो हम पाठकों से प्रार्थना करेंगे कि वे कृपया उसमें चतुर्वेदीजी की अनुकम्पा ही अधिक मानें।

इस संग्रह को प्रकाशित करने के लिए मान्य प्रेमीजी का शब्दों में आभार स्वीकार करना केवल औपचारिकता होगी और सभी प्रकार के प्रदर्शनों से सदा बचनेवाले प्रेमीजी निश्चय ही उसे पसंद नहीं करेंगे।

इन पंक्तियों को लिखते समय हमारा मन बुन्देलखण्ड के पुनीत तीर्थ कुण्डेश्वर तथा उसके निकटवर्ती रमणीक स्थलों में पहुँच गया है, जहाँ हमने अपने जीवन के सब से मधुर छः वर्ष व्यतीत किये थे, जहाँ इस संग्रह की कई कहानियाँ लिखी गई थीं और जहाँ की सुखद स्मृति इतनी दूर बैठे हुए आज भी हमें आह्लादित कर देती है। उस पुण्य-भूमि को हमारा शत-शत प्रणाम !

७/८ दरियागंज, दिल्ली
नया वर्ष जनवरी १, १९५१

—यशपाल जैन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यशपालजी

(एक चित्रण)

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

सन् १९३४ की बात है। प्रयाग के किसी सज्जन ने अपनी एक कहानी 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ भेजी। उसे हमने पढ़ा और कुछ त्रुटियाँ बतलाकर उसे लौटा दिया। कहानी-कला के हम विशेषज्ञ नहीं, फिर भी संपादकीय कर्तव्यवश हमें कहानियाँ पढ़नी पड़ती थीं और उनके विषय में निर्णय भी देना पड़ता था। जिस दिन हमने वह कहानी लौटाई उस दिन यह स्वप्न में भी खयाल नहीं किया था कि जिन नवयुवक विद्यार्थी के प्रति हम यह धृष्टतायुक्त वर्ताव कर रहे हैं वे हमें निकट भविष्य में सहायक के रूप में प्राप्त हो जायँगे और हमारे जीवन के सर्वोत्तम छः वर्ष उन्हीं के साथ बीतेंगे।

पिछले दस वर्षों से यशपालजी से हमारा घनिष्ट संबंध रहा है और बिना किसी संकोच के हम कह सकते हैं कि यदि हिन्दी-साहित्य के एक दर्जन मूक साधकों की गणना की जाय तो यशपालजी का नाम उनमें काफी ऊँचा रहेगा। 'मूक' शब्द का प्रयोग हमने जान-बूझकर किया है। यद्यपि यशपालजी का नाम पत्रों में कभी-कभी छप जाता है, कुछ मौलिक, अनूदित और संपादित ग्रन्थ भी उनके नाम से निकल गये हैं, सभाओं और सम्मेलनों में भी दर्शक की हैसियत से वे यदा-कदा दीख पड़ते हैं; पर उनका अधिकांश कार्य ऐसा होता है, जिसका परिचय पाठकों को मिल ही नहीं पाता। जिस प्रकार युद्ध-क्षेत्र में अपना बलिदान सिपाही लोग करते हैं और यश मिलता है सेनापतियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को, उसी प्रकार पत्र-जगत और साहित्य-क्षेत्र में भी प्रधान संपादक ही मुख्यतया उस श्रेय को हड़प जाते हैं, जिस पर वस्तुतः सहायकों का ही अधिकार है ।

अक्तूबर सन् १९४० से दिसंबर सन् १९४६ तक ओरछा-राज्य (बुन्देलखण्ड) में जो भी साहित्यिक कार्य हुआ, उसका ८० फीसदी यशपालजी द्वारा ही किया गया था। 'मधुकर' के साढ़े तीन हजार पृष्ठों का संपादन, 'प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' का संपूर्ण कार्य, श्रीमान् ओरछेश को समर्पित दो हस्तलिखित अभिनन्दन-ग्रन्थों का संपादन, स्व० हेमचन्द्र के संस्मरणों का संकलन, सम्पादन और प्रकाशन, अहार तथा पपौरा क्षेत्र-विषयक पुस्तकों का संपादन, प्रांतीय-साहित्य-सम्मेलन तथा प्रांत-निर्माण-आन्दोलन, इन सभी यज्ञों में यशपालजी का प्रमुख हाथ रहा था। बन्धुवर रामनरेशजी त्रिपाठी ने कुण्डेश्वर में हमसे कहा था,

"आप एक विषय में बड़े सौभाग्यशाली हैं। जैसे सहायक—यशपाल-जी तथा जगदीशजी—आपको मिले हुए हैं वैसे हिन्दी जगत् में दुर्लभ हैं।" पर हम इस विषय में प्रारंभ से ही सौभाग्यशाली रहे हैं। स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा, बन्धुवर धन्यकुमार जैन, श्रीपति पाण्डे, श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री प्रेमनारायण खरे, श्री चतुर्भुज पाठक और श्री कृष्णकिशोर द्विवेदी जैसे सुयोग्य सहायक हमें निरन्तर मिलते रहे हैं और जो अत्यल्प सेवा हमसे बन पड़ी है, उसका अधिकांश श्रेय इन्हीं बन्धुओं को मिलना चाहिए ।

जब हमने श्रीयुत ब्रजमोहन वर्मा का परिचय कराते हुए महा-माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजी से कहा, "ये हैं 'विशाल भारत'—कार्या-लय की बहू और मैं हूँ सास।"—तो शास्त्रीजी खूब हँसे और बोले, "बस, मैं समझ गया। बिचारी बहू को सबसे पहले उठना पड़ता है, दिन भर काम में जुटे रहना पड़ता है और सबसे अन्त में सोना पड़ता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"और सासजी दिन भर मौज करती हैं।" शास्त्रीजी के स्वर में स्वर मिलाते हुए मैंने इतना और जोड़ दिया।

ईमानदारी के साथ हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि हमारे बुन्देलखण्ड-प्रवास को आनन्दमय बनाने में यशपालजी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। वे विनम्र हैं, सौम्य स्वभाव के हैं और आज्ञाकारी भी, और उनके इन गुणों से हमने काफी लाभ उठाया है। चाय पीना, गप्पें लड़ाना, चिट्ठियाँ लिखना और वन में घूमना, इस चतुर्मुखी प्रोग्राम को पूरा करने में हमें यशपालजी से बहुत सहायता मिली है। किसी लेख का संपादन करना तो रहा दूर, स्वयं अपने लेख का अंतिम प्रूफ भी शायद ही हमने कभी देखा हो।

वन-भ्रमण का हमें शौक था और यशपालजी जैसे आज्ञाकारी व्यक्ति साथ में थे। जभी मन में उमंग उठती, हम कह देते, "यशपालजी, आप भी अजीब आदमी हैं! वन ने निमन्त्रण दिया है, झरबेरियों का आतिथ्य ग्रहण करना है और स्वर्णमृगों के दर्शन, और आप प्रूफरीडिंग का मक्खीमारा काम कर रहे हैं! छोड़िए इसे। जरा बाहर चलिए।" चाहे प्रातःकाल हो या दोपहर अथवा संध्या, यशपालजी को हुक्म देकर हम साथ में ले ही लेते। स्वयं वे भी भ्रमण के अत्यंत प्रेमी रहे हैं; पर दुर्भाग्य की बात यही है कि वन-भ्रमण को उन्होंने जीवन का एक लक्ष्य नहीं बनाया। वे वन के वास्तविक 'नागरिक' अभी तक नहीं बने। अभी तक उनका शुभनाम उम्मेदवारों की ही सूची में दर्ज है। कुण्डेश्वर के निकटस्थ वन में हम लोग घंटों घूमते। कभी-कभी जंगली सूअर, सांभर इत्यादि मिल जाते थे; पर स्वर्णमृगों या चीतलों के झुंड-के-झुंड हमने बीसियों बार देखे हैं। कभी-कभी यशपालजी के अनुज वीरेन्द्र और राजेन्द्र भी साथ-साथ हो लेते, श्रीमती आदर्शकुमारी (बहूरानी) तो साथ रहती ही थीं और मोती कुत्ता भी। हम सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर जंगलीपन सवार हो जाता और चीतलों का पीछा करते-करते हम बहुत दूर निकल जाते। हमारी वन्य प्रकृति उस समय जाग्रत हो जाती थी और तब हमें यही प्रतीत होता था कि स्वर्णमृगों के अत्यंत निकट पहुँचकर उनका दर्शन करना ही हमारा मुख्य कार्य है।

जब हमारी यह वन्य प्रकृति बहुत बढ़कर सीमा को उल्लंघन कर गई और अनेक प्रातःकाल उसी में बीतने लगे तो यशपालजी ने एक दिन कहा, "देखिये दादाजी, एक समझौता कर लीजिए। सवेरे से बारह बजे तक हमें काम करने दीजिए। शाम को आप जहाँ कहें, मैं चलूँगा।" यशपालजी का यह घरेलूपन, जिसके मूल में उनकी कर्तव्य-प्रियता का 'दुर्गुण' था, हमें खटका तो बहुत; पर मजबूरन हमें समझौता करना पड़ा, यद्यपि उस समझौते को तोड़ने में भी हम अनेक बार सफल हुए। खास तौर से वसंत ऋतु में तो, जब पलाश के सुन्दर पुष्पों से मधुवन लद जाता है, इस समझौते पर कभी भी अमल नहीं हुआ।

पर हम लोगों के ये वन-भ्रमण सांसारिक दृष्टि से भी सर्वथा निरर्थक रहे हों, ऐसा हम नहीं मानते। उनमें विशेषांकों के निकालने की आयोजना बनी, पत्रकार-विद्यालय की चर्चा हुई, अभिनन्दन ग्रन्थों की स्कीम सोची गईं और कितने ही लेखों के लिए मसाला भी प्राप्त हुआ, यद्यपि हम जानते हैं कि हमारे ये अपराध वन की सच्ची नागरिकता से हमें बर्खास्त कराने के लिए काफी संगीन थे।

"अबकी बार आगरे में हमने आचार्य रामलोचनशरणजी को दिया गया अभिनन्दन-ग्रन्थ देखा। ऐसा ग्रन्थ तो प्रेमीजी को भी मिलना चाहिए।" मैंने एक दिन टहलते हुए कहा। यशपालजी ने उत्तर दिया, "हम लोग इस यज्ञ को कर सकते हैं। आप इस कार्य को हाथ में ले लीजिए। पूरा हो जायगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"म एक शर्त पर यह कार्य उठा सकता हूँ, वह यह कि मुझे हस्ताक्षर करने के सिवाय दूसरा कोई काम न करना पड़े।"

"आप की शर्त स्वीकार है; पर कभी-कभी हस्ताक्षर के साथ दो-चार पंक्तियाँ भी चिट्ठियों पर लिख दीजिए।" यशपालजी ने हँसते हुए कहा।

"मंजूर है।"

बस इस छोटी-सी बातचीत का शुभ परिणाम साढ़े सात सौ पृष्ठों का वह अभिनन्दन-ग्रन्थ है, जिसकी प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की थी। उसकी तैयारी में यशपालजी के दो वर्ष लग गये। उन्हें सैकड़ों ही पत्र लिखने पड़े, लम्बी-लम्बी यात्राएँ करनी पड़ीं, लेखों का संग्रह और सम्पादन करना पड़ा, समस्त ग्रन्थ के प्रूफ देखने पड़े और उत्सव में भाग लेने के लिए भी जाना पड़ा। कार्य किया यशपालजी ने और बन्धुवर वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने और यश मिला इन पंक्तियों के लेखक को।

अहार-क्षेत्र की यात्रा पर हम लोग गये हुए थे। जैनों के लिए तो वह तीर्थ-स्थान है ही, पुरातत्व की दृष्टि से भी उसका बड़ा महत्व है और समीपस्थ प्राकृतिक दृश्यों तथा वनश्री का क्या कहना! मैं तो एक बार उस तीर्थ की यात्रा पहले भी कर चुका था; पर यशपालजी वहाँ प्रथम बार ही गये थे। घुल-मिल कर बातचीत करना यशपालजी के स्वभाव का एक अंग ही है। उन्होंने वहाँ के छात्रालय के विद्यार्थियों से बड़ी सहृदयतापूर्वक पूछा, "क्यों भई, तुम्हें दूध मिलता है?"

बच्चों ने भोलेपन से कहा, "नहीं।"

"और घी?"

उसका भी उत्तर मिला, "नहीं।"

"साग-तरकारी तो मिलती ही होगी!"

उसका भी जवाब था, "नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैं पास ही खड़ा था। मुझे अपनी हृदयहीनता पर बड़ी लज्जा आई, क्योंकि अपनी यात्रा में मैंने इन विद्यार्थियों से निकट संपर्क कायम करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया था। पर यशपालजी की आँखों में आँसू झलक गये। थोड़ी दूर आगे चले तो बीसियों खण्डित मूर्तियाँ जमीन पर पड़ी हुई दीख पड़ीं। आगन्तुकों के चरण उन पर पड़ते थे। इस बार यशपालजी की धार्मिक प्रवृत्ति और सौन्दर्य-भावना जाग्रत हो गई और उन्होंने वहाँ के कार्यकर्ताओं को आड़े हाथों लिया। उपयुक्त अवसर समझकर मैंने यशपालजी से कहा, "ये लोग तो निरपराध हैं। न इन्हें प्राचीन निर्जीव मूर्तियों का महत्व ज्ञात है और न नवीन सजीव मूर्तियों के गौरव को ये समझते हैं। ये तो अशिक्षित हैं ! पर आप तो शिक्षित हैं, जैन भी हैं और सौंदर्य-प्रेमी भी। आप इस आन्दोलन को उठा लीजिए और यहाँ एक संग्रहालय बनवा दीजिए।"

यशपालजी बोले, "आप पथ-प्रदर्शक बन जाइए। काम मैं कर दूँगा।" अपने प्राचीन नियमानुसार चिट्ठियों पर हस्ताक्षर कर देने के लिए मैं सहर्ष उद्यत हो गया, और आज अहार-क्षेत्र में पन्द्रह-बीस हजार का जो संग्रहालय दीख पड़ता है उसके पीछे यशपालजी की कई वर्ष की साधना छिपी हुई है। अनेकों बार अहार की यात्रा उन्हें करनी पड़ी है। घरकी हारी-बीमारी में भी उन्हें वहाँ १६-१७ मील दूर जाना पड़ा है। यद्यपि रुपयों के एकत्रित करने का काम ब्रह्मचारी फतेहचन्दजी को करना पड़ा था, तथापि उस संग्रहालय में आत्मा की प्रतिष्ठा यशपालजी ने ही की थी। जो सैकड़ों-सहस्रों यात्री उस सुन्दर भवन को वहाँ देखते ह वे इसकी कल्पना भी नहीं कर पाते कि एक साधक को इसके निर्माण के लिए कितनी तपस्या करनी पड़ी थी। आज भी यशपालजी को दिल्ली में बैठे इस बात की चिंता है कि संग्रहालय की छत अधूरी है और मूर्तियाँ यथास्थान प्रतिष्ठित नहीं हो पाईं !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसी प्रकार 'हेमचन्द्र-संस्मरण' पुस्तक भी एक दिन साथ-साथ टहलने का परिणाम है। स्वतन्त्र आकाश के नीचे मुक्त वातावरण में और एकान्त में टहलते हुए सैकड़ों विचार आते हैं और जहाँ-के-तहाँ विलीन हो जाते हैं। काश हम उन प्रेरणाप्रद क्षणों को स्थायी बना कर उनसे काम ले सकते ! यशपालजी में यह अद्भुत गुण है कि वे क्षणों को बाँध लेना और आयोजनाओं को कार्यरूप में परिणत कर देना जानते हैं। कल्पना-जगत् की चीजों को वे साक्षात् करके दिखला सकते हैं। स्वच्छन्द आदमियों से काम लेने का नुसखा भी उन्हें मालूम है।

इस संसार में जो असुन्दरता दीख पड़ती है उसका मुख्य कारण यह है कि हम लोग देते कम हैं और लेते अधिक। एक पैसा लेकर दो पैसे का काम करनेवाले बिरले ही होते हैं। यशपालजी उन्हीं अल्पसंख्यक व्यक्तियों में हैं। अपने छः वर्षों के कुण्डेश्वर—निवास में उन्होंने छः हजार रुपये से अधिक वेतन में न लिया होगा; पर उन्होंने काम किया पचास हजार का, और अपने सरल हास्यमय स्वभाव तथा निस्वार्थ सेवा-भावना से आनन्द का जो वितरण उन्होंने किया, उसका मूल्य तो आँका ही नहीं जा सकता।

छोटे-छोटे कार्य ही वास्तविक योग्यता की कसौटी हैं और इन तथाकथित छोटे-छोटे कार्यों में ही यशपालजी के महत्व का दर्शन होता है। उदाहरणार्थ प्रूफ देखने का ही काम लीजिए। यशपालजी उसके विशेषज्ञ हैं। क्या मजाल कि एक भी अशुद्धि उनसे छूट जाय ! प्रूफ-संशोधकों को कितना श्रम करना पड़ता है, उसकी कल्पना साधारण पाठक कर ही नहीं सकते। जब-जब सुयोग्य लेखक 'सस्ता-साहित्य-मंडल' के ग्रन्थों के शुद्ध पाठ की प्रशंसा करते हैं तब-तब हमें यशपालजी की परिश्रमशीलता का स्मरण हो आता है। चाहे घर में कैसी ही भयंकर बीमारी हो, कोई भी जरूरी काम पड़ा हो; पर यशपालजी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'मधुकर' के प्रूफ-संशोधन का काम कभी भी नहीं छोड़ते थे। मुझे ऐसे मौकों पर बड़ी झुंझलाहट होती थी। "फेंकिए इस चीज को। दो-चार अशुद्धियां रह भी जायंगी तो उससे पाठकों की कौन-सी भयंकर हानि हो जायगी!"—मैं कहता। पर यशपालजी को यह तर्क कभी भी स्वीकृत नहीं हुआ। वे पाठकों के प्रति वफादार ही रहना चाहते हैं। "जिस क्षण में जो काम हमें करना है उसे ईमानदारी से करना है।"—यह उनका तर्क है और भरसक वे इस पर चलने का प्रयत्न करते हैं।

एक घटना का हमें खास तौर से स्मरण है। टीकमगढ़ के जैन-समाज में पारस्परिक कलह थी। यशपालजी विरोधियों में समझौता कराने के लिये प्रयत्नशील थे। हम दोनों चार मील दूर टीकमगढ़ गये हुए थे। दुर्भाग्यवश उन्हीं दिनों उनकी धर्मपत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी अत्यंत बीमार थीं। यशपालजी शांतिपूर्वक उन लोगों को समझा रहे थे। न उनके चहरे पर कोई शिकन थी, न चिंता का भाव, और मैं अत्यंत चिंतित अवस्था में कभी उनकी ओर देख रहा था तो कभी उन अज्ञानी जैनी-भाइयों की ओर, जिन्होंने कोई बात न समझने की मानों प्रतिज्ञा-सी करली थी। जैसे-तैसे बातचीत बन्द कराके मैंने यशपालजी से कहा, "आप भी हृदयहीन आदमी हैं! वहाँ बहूरानी मरणासन्न हैं और आप यहाँ इन लोगों से सिरपच्ची कर रहे हैं!"

यशपालजी ने विनम्रता-पूर्वक इतना ही कहा, "डाक्टर कोठारी जैसे सुयोग्य व्यक्ति इलाज कर रहे हैं। मेरे चिंता करने से क्या होगा? इन लोगों में मेल कराने का जो काम हाथ में लिया है, फिक्र करने से वह बिगड़ ही सकता है। इसलिए इस अवसर पर तो मुझे निश्चिंत होकर इन्हें समझाना ही था।" रास्ते भर मैंने यशपालजी को उनकी हृदयहीनता पर खासी डाट बतलाई; पर पीछे मैंने सोचा तो यशपाल-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जी के तर्क में सार प्रतीत हुआ। महात्माजी ने एक पत्र में लिखा था, "जिस कार्य में लगे हुए हो उसी को तन्मयतापूर्वक करना यही ब्रह्मचर्य है न ?" यशपालजी ने ब्रह्मचर्य की यह परिभाषा भले ही न पढ़ी हो, पर तदनुसार कार्य वे अवश्य करते रहे हैं। कुण्डेश्वर छोड़ने के बाद पिछले चार वर्षों में जिन भयंकर गार्हस्थिक झंझटों में—बीमारियों और तीमारदारियों में, उन्हें फँसना पड़ा है, उनमें कोई साधारण व्यक्ति तो अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठता। पर अपना कर्तव्य-पालन करके शेष परिणाम ईश्वर पर छोड़ देने में यशपालजी का विश्वास है और इसी में उनकी परिश्रमशीलता तथा सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

यशपालजी कोई तेजस्वी पत्रकार नहीं हैं और न कोई प्रतिभाशाली लेखक ही; पर अनेक तेजस्वियों तथा प्रतिभाशालियों को वे उतना ही पीछे छोड़ गये हैं, जितना सुप्रसिद्ध कहानी का वह कछुआ उस खरगोश को पीछे छोड़ गया था, और यदि प्रतिभा की वह परिभाषा ठीक है—"प्रतिभा के मानी हैं ९० फीसदी पसीना बहाना और दस फीसदी प्रेरणा।" (Genius is nine-tenth perspiration and one-tenth inspiration)—तो यशपालजी प्रतिभाशाली भी माने जा सकते हैं। वस्तुतः वे उन हिमखण्डों (Iceberg) की तरह हैं, जिनका $\frac{9}{10}$ हिस्सा जल के भीतर ही रहता है। यशपालजी का अधिकांश कार्य ऐसा होता है, जो प्रकाश में आ ही नहीं सकता। वे नेता नहीं बनना चाहते। जिन तिकड़मों से मनुष्य आगे बढ़कर उच्च पदों को ग्रहण करते हैं, उनसे वे परिचित ही नहीं। साहित्य-मन्दिर के प्रधान पुजारी बनने की भी उन्हें आकांक्षा नहीं। हाँ, उस मन्दिर को स्वच्छ रखने और यात्रियों तथा पुजारियों के मार्ग को प्रशस्त करने में ही वे अपना कल्याण मानते हैं। दूसरों के यश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की रक्षा करते हुए ही वे अपने नाम 'यशपाल' को सार्थक करते रहे हैं। इंजीनियर कोई भी बन जाय, वे नींव के पत्थर ही बनना चाहते हैं। यदि महत्वाकांक्षा का कोई इंजैक्शन निकल आवे और उसका प्रयोग यशपालजी पर कर दिया जाय तो निस्संदेह वह एक सुयोग्य एम० पी० बन सकते हैं। तदनुरूप उनका रूप भी है, व्यक्तित्व भी और योग्यता भी। पर यशपालजी महत्वाकांक्षा से कोसों दूर हैं। यशपालजी तो एक घरेलू प्राणी हैं। वे किसी के अनुज बन सकते हैं तो किसी के अग्रज, किसी के मामा तो किसी के भानजे और शिष्य तो वे सभी के बन सकते हैं—शिष्यत्व की भावना उनमें इतनी प्रबल है; पर वे नेता किसी के भी नहीं बन सकते।

नागरिक सभ्यता का यह अभिशाप है कि जिन्हें आश्रम बनाकर प्रकृति के निकट रहना चाहिए था वे जनाकीर्ण गलियों में रह रहे हैं! विंध्यप्रदेश अब भी यशपालजी की प्रतीक्षा कर रहा है। वे स्वयं बुन्देलखण्डी नहीं, ब्रजवासी हैं; पर दो बुन्देलखण्डियों (पुत्री अन्नदा और चि० सुधीर) के पिता अवश्य हैं। अपने जीवन के सर्वोत्तम छः वर्ष बुन्देलखण्ड को प्रदान करके उन्होंने अपने जनपद ब्रज का गौरव ही बढ़ाया है।

कुण्डेश्वर में माता जमड़ार नदी उनकी याद कर रही है, जिसकी गोद में वे बहुत खेले हैं। जलप्रपात षड़ानन कभी गंभीर गर्जन से तो कभी कलकल निनाद से उन्हें बुला रहा है। उसके नीचे बैठकर और फिर कंधों पर तीव्र धार लेकर उठते हुए वे अनेक बार 'शिव' बने हैं। जामनेर के तट पर 'उषा-विहार' का वह मनोहर दृश्य उनके लिए उत्कंठित है, जिसका नामकरण-संस्कार उनकी उपस्थिति में हुआ था और मधुवन के चारों धाम—उषाकुंज, कुमारी अन्तरीप, बरीघाट और संगम—अपने तट पर उन्हें निमन्त्रण दे रहे हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महादेश में प्रांतीयता की महामारी को न फैलने देने का एकमात्र उपाय यही है कि जिस प्रांत में हमें रहना पड़े, उससे अपने प्रांत के समान ही प्रेम करें। यशपालजी ने अपने को पूर्णरूप से बुन्देलखण्डी ही बना लिया था और वहाँ के कार्यकर्ता अब भी अत्यंत कृतज्ञता-पूर्वक उनकी सेवाओं तथा उपकारों का स्मरण करते हैं।

अपने एकाकी वन-भ्रमण में हमें भी यशपालजी की निरन्तर याद आती है और अगली वसन्त ऋतु में तो (जो विंध्यप्रदेश में हमारी अंतिम वसन्त ऋतु होगी) उनकी अनुपस्थिति हमें खासतौर पर खटकेगी ।

पलाश फिर फूलेंगे, वन में मानों जगह-जगह होली का दृश्य उपस्थित होगा और उस मनोहर वनश्री की छटा जीवन में एक बार फिर आशा का संचार करेगी; पर जिनके साथ हमने वन-भ्रमण के सर्वोत्तम आनन्द उठाये हैं, वे दिल्ली के रेगिस्तान में पुस्तकों का संपादन और प्रूफ संशोधन कर रहे होंगे ।

पर हम जानते हैं कि दुनिया के काम वन-भ्रमण से नहीं चला करते। यशपालजी ने तो साहित्य-उपवन की साज-सँवार का कर्तव्य अपने ऊपर ले लिया है। फिर भी कहाँ उपवन में माली की नौकरी और कहाँ वन की स्वच्छन्द नागरिकता !

हमने अब भी यह आशा नहीं छोड़ी है कि यशपालजी किसी मशीन के पुर्जे न रहकर अपनी स्वतन्त्र कुटी का निर्माण किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थल में—किसी तपोवन के निकट, करेंगे और तब हमें उनके साथ वन-भ्रमण का आनन्द एक बार फिर प्राप्त होगा। तथास्तु !

कुण्डेश्वर (विन्ध्यप्रदेश)
७ दिसंबर, १९५०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूची

	पृष्ठ
(अ) दो शब्द	(१)
(आ) यशपालजी (एक चित्रण) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	(५)
१. मैं मरूँगा नहीं !	१
२. आधार-शिला	७
३. प्यार की नींव	१३
४. दो कौड़ी का सिक्का	२०
५. फकीर की दुआ	२८
६. आत्म-बोध	३४
७. वतन की मुहब्बत	३८
८. बिगड़ी आकृति	४७
९. करीम	५३
१०. निर्मोही का मोह	६०
११. कर्फ्यू पास	६७
१२. जीवन के खण्डहर में	७५
१३. चोरी !	८०
१४. बाबा की धरोहर	८७
१५. असतो मा सद्गमय	९३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

	पृष्ठ
१६. महायज्ञ का पुरस्कार	१००
१७. अपनी-अपनी चोट	१०६
१८. बंदीछोड़दाता	११२
१९. रेल में	११९
२०. काठ की हाँडी	१२७
२१. तमसो मा ज्योतिर्गमय	१३६
२२. काश्मीरी लोई	१४२
२३. महल की आज़ादी	१५१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १ :

मैं मरूँगा नहीं !

कृष्णकांत शरीर से बड़ा स्वस्थ है, अत्यंत संयमी; लेकिन इस बार वह अचानक बीमार पड़ा तो उसकी बीमारी काफी लम्बी हो गई। रोग यों साधारण था, लेकिन डाक्टरों के चक्कर में पड़कर उसका जो हाल हुआ उसे वही जानता है। उसने चाहा कि जल्दी अच्छा हो जाय; पर एक डाक्टर के इलाज से आराम होता न दीखा तो दूसरा आया, फिर तीसरा और चौथा, इस तरह डाक्टर पर डाक्टर आते गए। जो भी आता अपने से पहलों की आलोचना करता और ऐसा आश्वासन देता, मानों वह स्वयं ही भगवान का अवतार हो। कहता कि दो दिन में कृष्णकांत को आराम न दीख पड़े तो वह डाक्टरी छोड़ देगा। इस प्रकार डाक्टरों की अदल-बदल होती गई और कृष्णकांत का रोग भी गहरा होता गया।

रोगी से कहीं अधिक मुसीबत परिचारक की होती है। ठीक वही अवस्था शीला की थी। कृष्णकांत तो चारपाई पर पड़ा था; लेकिन बेचारी पत्नी का बुरा हाल था। घर का सारा काम-काज, ऊपर से पति की सेवा-शुश्रूषा, फिर चिंता। बंधी कमाई पर खर्च बेहिसाब। डाक्टरोंकी फीस, दवाकी कीमत, ऊपर से फलादि। पर शीला को इस सबकी उतनी चिंता न थी,जितनी कि एक बात को सोचकर होती थी : पति को कुछ हो गया तो? इस अशुभ कल्पना को वह मन से दूर रखने की चेष्टा करती थी, पति और घरवालों के बीच बैठ कर इस दुश्चिंता को भूल भी जाती थी; लेकिन जहाँ एकांत में बैठी कि वही बात फिर उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

थी। अपनी इस वेदना को शीला ही जानती थी,या उसके अन्तर्यामी। शीला समर्थ है, अपने पैरों खड़ी हो सकती है, पर जिस सूत के सहारे उसका जीवन चलता आया था, वही टूट गया तो वह टिकेगी किस आधार पर ? अपने सुख-दुख का बटवारा वह अपने स्वामी की गोद में मुंह छिपा कर लेती थी। वह गोद न रहेगी तो वह कहां सहारा पावेगी ?

दिन में लोग आते और दस तरह की बातें कह कर चले जाते। शीला उन सबकी बात ध्यान से सुनती और जब वे चले जाते तो उस पर सोचती। सोचती और उसका दिल फटता। सचमुच रोग बढ़ रहा है। देखो तो शरीर कितना पीला पड़ गया है। सुलेखा क्या ठीक ही कहती है कि इस बीमारी में रक्त पानी बन जाता है ? हाय, पैर कैसे हो गये हैं ! और हाथ ? जैसे किसी नें हल्दी पोत दी हो। यह सब सुन-सुनकर और देखकर वह और भी भयभीत होती है और भगवान से कहती है कि हे दीनानाथ, मुझे चाहे जितना कष्ट दे लेना, मेरी चाहे जितनी परीक्षा ले लेना, पर मेरी मांग का सिंदूर न पोंछना !

इस प्रकार एक महीना निकल गया; पर कृष्णकांत की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। पड़ोस में शादी थी। बड़ी-बड़ी तैयारियां हो रही थीं। तरह-तरह का सामान आ रहा था। ठीक उसके कमरे के सामने स्त्री-पुरुष बैठकर अट्टहास करते थे, बच्चे किलकारियाँ मारते थे; लेकिन कृष्णकांत या शीला उसमें रस नहीं ले पाते थे। मन सुखी हो तभी बाहरी चीजों में आनन्द आता है। उन दोनों के हृदय पर तो मानों दुःख का पहाड़-सा रक्खा था। नववधू आवेगी तो क्या इस शुभ अवसर पर उस घर के किसी भी कोने में व्यथा रहनी चाहिए ? नहीं, पर कृष्णकांत और शीला लाचार हैं और याचक हैं कि उन्हें क्षमा मिले।

जब एक पखवारा और निकल गया तो एक दिन कृष्णकांत ने कहा. "शीला !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रात के कोई ग्यारह बजे थे और शीला घर के काम-काज से निबट कर कृष्णकांत की चारपाई पर बैठी उसके पैर दबा रही थी। दिनभर की थकी थी, इससे पलक कुछ भारी हो आये थे। पति का संबोधन सुनकर वह बोली, "क्यों ?"

कृष्णकांत कराहा।

"क्यों, प्यास लगी है ? मौसम्मी का रस लाऊँ ? अंगर खाओगे ?"

कृष्णकांत ने कहा,"नहीं शीला, मुझे प्यास नहीं है। तुम सो जाओ।"

कहते-कहते शीला का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसे बच्चों की भांति थपकियां देने लगा। शीला की आंखें डबडबा आईं; पर कमरे की मद्धिम रोशनी में वह देख नहीं पाई कि कृष्णकांत की आंखोंसे भी कई बूंदें तकिये पर टपक पड़ी हैं। उसने अपना हाथ छुड़ाया नहीं और थोड़ी ऊपर को सरक कर दूसरे हाथ से पति का माथा दबाने लगी। दबाते-दबाते कुछ ऐसी विह्वल हो आई कि उसने कृष्णकांत की छाती पर अपना सिर टिका दिया, बोली, "तुम जल्दी अच्छे हो जाओ।"

कृष्णकांत ने उसका हाथ छोड़ दिया और उसके सिर को थपथपाने लगा। बोला, "शीला; शीला....!"

शीला ने देखा कि उसके सिर को दुलराता हाथ जैसे कांप उठा है और सांस भी कुछ गहरी हो आई है। उसने कहा, "तुम ऐसे घबराओगे तो कैसे काम चलेगा ! जल्दी से अच्छे हो जाओ। दादाजी की चिट्ठी आई है। उन्होंने बुलाया है। अच्छे होते ही वहां चलेंगे।"

और जाने क्या-क्या शीला कहती रही। कृष्णकांत का ध्यान उस ओर नहीं था। थोड़ी देर में वह बोला, "मैंने तुमसे कहा था न कि चालीस बरस की उमर में तुमसे विछोह हो जायगा ! भगवान की मरजी कौन जानता है !"

पति की इस बात से शीला का दिल उमड़ आया। एक टीस-सी उठी। बोली "मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, पैर पड़ती हूं, मुझसे ऐसी बातें न करो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मेरी जान सूखी जाती है। जान कैसे यह देह चल रही है ! सच कहती ; ऐसी बातें करोगे तो कल टूटेगी सो यह देह आज ही टट जायगी ।"

कृष्णकांत कुछ बोला नहीं। उसका हाथ फिर पूर्ववत् सहधर्मिणी के सिर को दुलराने लगा। शीला ने चाहा कि पति के वक्ष पर यों सिर टिकाये एक भी आंसू न निकलने दे, लेकिन आंसुओं को वह रोक नहीं सकी और कई बूंदें आंखों की कोरों से निकल कर उसकी धोती के पल्ले में समा गईं। सुस्थिर हुई तो बोली, "लाओ, तुम्हारे सिर में तेल मल दूं। बड़ी खुश्की हो गई है।"

कह कर उसने सिर उठाना चाहा, लेकिन कृष्णकांत ने उठने नहीं दिया। थोड़ी देर में कृष्णकांत की आँख लग गई। बीच में नींद खुली तो उसने देखा कि शीला ने सिर हटा लिया है और पास ही पड़ी सो रही है। वह थोड़ी देर उसकी ओर देखता रहा, फिर धीरे से उसने एक बार निद्रा-ग्रस्त पत्नी को प्यार किया, अनन्तर दूसरी ओर करवट लेकर सो गया।

सवेरे उठा तो दिन निकल आया था। शीला उसके पास नहीं थी। वह पहले ही उठकर उसके लिए पानी गरम करने चली गई थी।

पड़ोस में खूब चहल-पहल थी। विवाह का एक दिन शेष रह गया था। कृष्णकांत ने बाहर झांक कर देखा। आटे की तरह मुंह पर पाउडर पोते सजी-धजी एक तरुणी बरामदे में टहल रही थी और धीरे-धीरे गा रही थी— "करले श्रृंगार चतुर अलबेली, साजन के घर जाना होगा।" बार-बार वह इसी कड़ी को दुहराती थी। कृष्णकांत ने सुना और सोचने लगा कि यह ठीक ही कहती है। वधू श्रृंगार कर रही होगी और फिर अपने साजन के घर आवेगी। क्या इसे भी अपने जीवन का वह मंगलमय दिन याद आ रहा है? और वह गाये ही जा रही है—"करले श्रृंगार...।"

कृष्णकांत की कल्पना तब अपने छः वर्ष पहले के जीवन पर जा पहुंची,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब शीला के साथ उसका विवाह हुआ था । शीला तब कितनी स्वस्थ थी और धानी साड़ी में कैसी अच्छी लगती थी । उस मधुर कल्पना से उसका शरीर सिहर उठा । तभी शीला सामने आ खड़ी हुई । बोली, "पानी लाऊं ? हाथ-मुह धोओगे ?"

कृष्णकांत अनजाने मुस्करा उठा । प्रसन्नता की एक लहर शीला के ऊपर से नीचे तक दौड़ गई । उसे क्या पता था कि कृष्णकांत आज की नहीं, छः बरस पहले की दुनिया में विचर रहा है ।

कृष्णकांत ने शीला को देखा और कुछ क्षण सोचता रहा । वह चला गया तो भगवान को छोड़ शीला का और कौन है ? बच्चों को लेकर वह अकेली कैसे जीयेगी ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा । जिस धागे में हम दोनों बंधे हैं वह इतना कच्चा नहीं कि टूट जाय । और तब जाने कहां से उसके अन्दर अपार दृढ़ता आ गई । मन-ही-मन बोला—"नहीं, मैं मरूंगा नहीं नहीं मरूंगा ।" बहुत पहले पढ़ी एक कविता उसे याद आ गई, जिसमें कवि ने अपनी समूची इच्छा-शक्ति को केन्द्रीभूत करके कहा था—"मैं स्वयं अपने भाग्य का निर्णायक हूं, मैं स्वयं अपने भाग्य का स्वामी हूं । मैं मौत को अपनी आखों पर पट्टी नहीं बांधने दूंगा, न उसके इशारों पर नाचूंगा । मैं स्वयं अपने भाग्य का स्वामी हूं ।"

कृष्णकांत ने पेंसिल से वह कविता एक कागज पर लिख डाली और अन्त में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा—"नहीं, मैं मरूंगा नहीं ?"

इसके बाद उसने बच्चों को बुलाकर खूब प्यार किया । शीला से हंस-हंस कर बातें कीं । कहा, "देखोजी, अब मैं जल्दी ही अच्छा हो जाऊंगा । दादाजी को चिट्ठी लिख देना कि हम लोग शीघ्र ही वहां आने वाले हैं । आज ही लिख देना, भूलना नहीं । पन्द्रह दिन ! नहीं जी, सात दिन में मैं ठीक हो जाऊंगा । और सुनो, जाड़ा शुरू हो गया है । कुछ गरम कपड़े बनवाने होंगे क्या ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसी अप्रत्याशित आशाभरी बातें सुनकर शीला का हृदय वासों उछल पड़ा। बोली, "तुम्हारी बीमारी के बाद वह पहला ही जाड़ा होगा। एक जाकेट और एक ओवरकोट तुम्हारे लिए बहुत ही जरूरी हैं।"

"ठीक है। तो आज ही ये चीजें सिलने दे देना। और देखो, अपने और हरीश के लिए एक-एक पूरी बांह का स्वेटर भी बाजार से ले आना।"

हंसती हुई शीला बोली, "आप चिंता न करें। मैं सब ठीक कर लूंगी।" कहकर वह अपने काम में लग गई।

उस दिन से कृष्णकांत की अवस्था में सुधार होने लगा। सवेरे उठते ही वह तकिये के नीचे से उस पर्चे को निकाल कर पढ़ता और अन्त में मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे शब्दों को अपनी पूरी ताकत के साथ दोहराता—"नहीं, मैं मरूंगा नहीं।"

चौथे दिन पड़ोस में नववधू आई तो गाजे-बाजे के साथ उसका स्वागत हुआ। अपने हृदय के उल्लास को छिपाये संकोच के भार से दबी जब उस नव-परिणीता ने गृह-प्रवेश किया तो कृष्णकांत ने मन-ही-मन उसके लिए शत-शत मंगलकामनाएं कीं और पड़ोसी को बुलाकर बधाइयां दीं। शीला ने भी उल्लास के साथ उसमें योग दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कृष्णकांत अब पूर्णतया स्वस्थ है। शीला उसकी नीरोगिता का असली भेद नहीं जानती और प्रायः उससे कह उठती है कि देखोजी, वैद्य की दवा ने तो कमाल ही कर दिखाया।

पत्नी के इस भोलेपन पर कृष्णकांत हंसने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: २ :

आधार-शिला

आर्यपुत्र की अवस्था अधिक नहीं थी। देखने में वह युवक-सा ही लगता था; लेकिन उसका प्रभाव उस पांच-सात हजार की आबादी के कस्बे में ही नहीं, बल्कि काफी दूर-दूर तक व्याप्त था। सेवा की जहां आवश्यकता हो, हो नहीं सकता था कि वहां आर्यपुत्र मौजूद न हो। उस भूमि के जन-जन के लिए मानों वह और उसकी सेवाएँ समर्पित थीं। गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए छोटे-बड़े जितने आंदोलन हुए, आर्यपुत्र ने सब में भाग लिया और खूब खुलकर। वह उन व्यक्तियों में से नहीं था जो खून लगा कर शहीद बनते हैं या लीडरों की चापलूसी करके थोड़ा-बहुत नाम कमा लेते हैं। वह तो सच्चा सेवक था, सच्चा साधक। नाम की उसे चाह न थी; पर काम के समय पीछे रहना वह नहीं जानता था। दिनभर का थका-मादा खाना खाने बैठा है कि खबर आती है, अमुक गांव के किसान पर अमुक जमींदार का कारिन्दा बड़ी सख्ती कर रहा है। तब कहां का खाना और कहां का पीना! आर्यपुत्र परोसी थाली छोड़ उस संकटग्रस्त बन्धु की रक्षा करने के लिए चल पड़ता है। ऐसे एक नहीं, सैंकड़ों दृष्टांत हैं। आर्यपुत्र का विश्वास था कि दुःखी की पुकार भगवान की ओर से आती है और उसे अनसुनी करना या टालना पाप है, अक्षम्य अपराध है।

उस कस्बे में सभी आर्यपुत्र के मित्र थे। कारण कि बिना किसी भेदभाव अथवा पक्षपात के वह सब के लिए समान रूप से सुलभ था। उसकी न्याय-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रियता सभी जानते थे। एक बार उसके अनुज देवपुत्र और पड़ोसी के बीच धरती के एक टुकड़े पर तनातनी हो गई। जब आर्यपुत्र ने देखा कि देवपुत्र ईमानदारी से काम नहीं ले रहा है तो उसने बिना किसी हिचकिचाहट के वह भू-भाग पड़ोसी को दिलवा दिया।

भारत की गुलामी उसे असह्य थी। व्यक्तिगत रूप से शासक के प्रति उसके हृदयमें प्रेम और सेवा-भावना थी; लेकिन वह कहता था कि शासन बल का नहीं, अस्त्रों का नही, प्रेम का होना चाहिए और चूंकि वर्तमान शासन प्रेम का शासन नहीं है, इसलिए उसका अन्त जल्दी-से-जल्दी हो जाना चाहिए। गुलामी किसी की भी हो, बुरी है और यदि मानव को सच्चे अर्थों में प्रगति करनी है तो उसे इस अभिशाप से मुक्त होना होगा।

सन् '४२ का भयंकर तूफान आया। काले-काले मेघों से नभ आच्छादित हो गया। भले-भलों के उसने पैर उखाड़ दिए; पर आर्यपुत्र की जीवन-व्यापी साधना महान् थी और उसे उखाड़ना आसान काम नहीं था। उस आंदोलन में उसने जो किया, उसके कारण स्वाधीन भारत के अमर इतिहास में आर्यपुत्र का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। अपनी जान को खतरे में डाल कर उसने अनगिनत निरीह प्राणियों की रक्षा की। नौकरशाही का दमन ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, आर्यपुत्र का आत्मबल और अधिक पुष्ट होता गया। अब भी उसे एक क्षण का भी अवकाश नहीं था। चारों ओर से पुकार उठ-उठकर आ रही थी। ऐसे में आर्यपुत्र को चैन कहां !

एक दिन मां ने कहा, "बेटा, ऐसा भी क्या कि तुम्हें खाने की भी फ़ुरसत नहीं !"

वह बोला, "मां, तू खाने की कहती है, देख तो चारों तरफ क्या हो रहा है ! ऐसे में भूख-प्यास किसे लगती है !"

"बिना खाये देह कैसे चलेगी ?"

आर्यपुत्र मुस्करा उठा। बोला, "मां, देह खाने-पीने से ही चले तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

फिर घी-दूध के खाने वाले तो उड़ें। देह को चलाने के लिए तो और ही कुछ चाहिए।"

मां चुप हो गईं; पर चारों ओर सरकार के अत्याचार को देखकर वह किसी अज्ञात आशंका से कांप उठी थीं।

आर्यपुत्र के उन दिनों के कार्य का लेखा-जोखा भले ही आज कहीं लिखा हुआ न मिले, पर वे सहस्रों जन, जिनकी संकट में उसने सहायता की थी और उनकी संतति, चिरकाल तक उसकी ऋणी रहेगी।

× × ×

"अपने लड़के को समझाओ। ऐसी बगावत कौन सरकार है, जो बर्दाश्त कर सकती है?"—दरोगाजी ने आर्यपुत्र के पिता से कहा।

वह बोले, "वह जो करता है, ठीक ही करता है दरोगाजी। इतना अत्याचार करके कौनसी सरकार है, जो टिक सकती है?"

"अच्छा, यह बात! समझा, बगावत में तुम भी अपने बेटे के साथ हो!" दरोगाजी ने किंचित क्रोधित होकर कहा।

"अत्याचार का सभी को विरोध करना चाहिए।" आर्यपुत्र के पिता ने सहज भाव से कहा।

दरोगाजी का पारा एकदम चढ़ गया। बोले, "चुप रहो। 'अत्याचार-अत्याचार' कहते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

"शर्म? किस बात की?"

"चुप, खबरदार, जो अब मुंह से एक शब्द भी निकाला!"

आर्यपुत्र तभी लौटकर आया था और हाथ-मुंह धोकर भोजन करने बैठा ही था कि दरोगा और पिता की बातचीत उसने सुनी। परोसी थाली छोड़कर वह तत्काल बाहर आया और बोला, "दरोगाजी, आप इस तरह क्यों बोलते हैं? जरा तमीज से बात कीजिए।"

आर्यपुत्र को दरोगा अच्छी तरह जानते थे और उसके प्रभाव और लोक-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रियता पर मन-ही-मन जलते थे। उसकी बात से और उत्तेजित हो उठे बोले, "आइए, लाटसाहब, आपकी ही कसर थी ! आइए हुजूर, आइए !"

आर्यपुत्र ने कहा, "मेरा कर्तव्य मेरे सामने है और आपका आपके। हम लोग अपना-अपना काम करें; लेकिन बदजबानी करने का अधिकार किसी को भी नहीं है।"

"बहुत अच्छा सरकार।" दरोगा ने दांत पीसते हुए कहा। "चलिए, थाने में चलकर आपकी बात सुनी जायगी। चलिए।"

मां किवाड़ की आड़ में खड़ी देखती-की-देखती रह गईं, थाली परोसी-की-परोसी रह गई और आर्यपुत्र दरोगा के साथ थाने की ओर चल दिया। उसके पकड़े जाने की खबर बात-की-बात में सारे कस्बे में फैल गई और जब तक वह थाने पहुंचे कि एक अच्छी खासी भीड़ वहां जमा हो गई।

आर्यपुत्र ने वहां पहुंचते ही अपने मधुर पर दृढ़ कंठ से कहा, "इन्क-लाब !"

अगणित कण्ठ एक साथ फूट पड़े, "जिन्दाबाद !"

दरोगा इस पर और चिढ़ गया। बोला, "फांसी के तख्ते पर लटकते हुए भी तुम्हारी अकड़ और शान नहीं जायगी।"

उसके बाद जो हुआ, उसकी आसानी से कल्पना नहीं की जा सकती। थाने के एक सिपाही ने बाद में बताया कि उस रात आर्यपुत्र की इतनी ठुकाई उस हृदयहीन दरोगा ने की और अपने सिपाहियों से कराई कि अन्त में वह संज्ञा-शून्य होकर गिर पड़ा। तब दरोगा आगे बढ़कर आया और बूट की एक ठोकर जमा कर बोला, "क्यों, अब क्यों नहीं नारा लगाता ? बदमाश कहीं का !"

आर्यपुत्र को तीन दिन थाने में रखकर फिर जिले की जेल में भेज दिया गया और उस पर डकैती का संगीन आरोप लगाया गया। दरोगा का कहना था कि खेमपुर की मशहूर डकैती में इसका बड़ा हाथ था। जिले में इधर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जितने डाके पड़े हैं, उनमें से अधिकांश में यह मौजूद रहा है और जिनमें नहीं जा सका, उनमें इसके आदमी रहे हैं और हथियारों की इसने मदद दी है।

जेल के अधिकारी आर्यपुत्र का नाम पहले ही सुन चुके थे और वे जानते थे कि उस जिले में उसका असर कितना व्यापक है। इसलिए उन्हें इस व्यक्ति के संबंध में अपने कर्तव्य को निश्चित करते देर न लगी।

तीन दिन और तीन रात उसे कालकोठरी में रखा गया, जहाँ सोना तो दूर, पैर फैलाकर भी वह नहीं बैठ सकता था। भोजन, पानी कुछ भी नहीं मिला। चौथे रोज उसे जेलर के सामने पेश किया गया। वार्डर ने बाद में बताया कि वहां एक थाल में बढ़िया भोजन रखा था। आर्यपुत्र के पहुंचते ही जेलर ने कहा, "मुझे सब बातें मालूम हो गई हैं। मैं ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। तुम मंजूर कर लो कि तुमने डाके डाले हैं। तुम्हारे मंजूर करते ही तुम्हें यह भोजन मिल जायगा और फिर तुम्हारी रिहाई भी मैं करा दूंगा।"

लेकिन आर्यपुत्र ने निर्भीकता-पूर्वक उत्तर दिया, "जेलर साहब, आप बच्चों की-सी बात क्यों करते हैं? आर्यपुत्र को आपने समझ क्या रखा है?"

जेलर ने कठोर होकर कहा, "तुम देख लो। मैं तो चाहता हूं कि तुम छूट जाओ; लेकिन वह तुम्हारे हाथ है।"

"जीहां, मेरे हाथ तो है ही।"—आर्यपुत्र ने केवल इतना ही कहा और आगे कुछ कहना व्यर्थ समझकर चुप हो गया।

इसके पश्चात जितनी शारीरिक यातनाएं उसे दी जा सकती थीं, दी गईं। आर्यपुत्र ने स्पष्ट कह दिया कि मेरा यह शरीर तुम्हारे हाथ में है। इसका जो चाहो, कर लो। पर इसके भीतर वास करने वाली आत्मा को दबाना किसी के भी बस की बात नहीं है।

जेल-अधिकारियों ने भी समझ लिया कि उनके दण्ड-विधान की साधारण क्रिया उस पर असर करने वाली नहीं है। तब उन्होंने उसे जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यातनाएं दीं, उन्हें लिखना संभव नहीं है। उन्हें सुनकर मानवता का भी सिर नीचा हो जाता है।

कई दिन की अमानुषिक पीड़ाओं के बाद जब उस कर्तव्यनिष्ठ देशभक्त का शरीर निर्जीव-सा हो गया तो जेल के जल्लादों ने उसे उठाकर आधी रात के समय कुएं में पटक दिया और अगले दिन प्रकाशित कर दिया कि उसने कुएं में कूद कर आत्म-हत्या कर ली। इस सफेद झूठ का विरोध आज भी उस जेल की दीवारें करने को खड़ी हैं।

आर्यपुत्र चला गया। उसके शरीर को बहुतेरा सताया गया, लेकिन उसकी आत्मा अन्त समय तक वैसी-की-वैसी निर्मल और तेजस्विनी बनी रही।

बात पुरानी हो गई, किन्तु हम अपने अन्तर में अनुभव करते हैं कि स्वाधीनता का जो प्रासाद आज खड़ा हुआ है, उसकी आर्यपुत्र और उसके जैसे शहीद आधारशिला हैं। उनके उत्सर्ग की स्मृति युग-युगांतर तक देशवासियों को कर्तव्यपथ पर चलने की प्रेरणा देती रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ३ :

प्यार की नींव

वैसे उनका नाम तो था रहमतउल्ला खां, लेकिन छोटे-बड़े सब उन्हें 'मौलवी साहब' कहकर पुकारते थे। थोड़ी-सी आबादी की बस्ती थी। कोई विशेष बात उसमें नहीं थी—न पक्की सड़क, न बिजली, न शफा-खाना; फिर भी मौलवी साहब को उस गांव से बड़ी मुहब्बत थी। कारण कि उनका जन्म वहीं हुआ था और वहीं की मिट्टीमें खेल-कूदकर वह बड़े हुए थे। उनके विशेष अनुराग की एक और भी वजह थी। वह यह कि उनका इकलौता बेटा करीम भरी-पूरी उम्र में वहीं उनसे हमेशा के लिए बिछुड़ा था और उसकी स्मृति में उन्होंने एक छोटी-सी यादगार गांव-बाहर बनवा दी थी। सो नहर की अफसरी से जब उन्हें अवकाश मिला तो उन्होंने उसी गांव में एक मदरसा खोल दिया और बड़े प्यार से बच्चों को पढ़ाने लगे। बच्चों से मौलवी साहब को बड़ा स्नेह था और बच्चे भी उन्हें प्यार करते थे। दौड़कर उनकी चिलम भर लाना, खेत से साग-सब्जी ले आना और तीज-त्यौहार पर उनके लिए बढ़िया-बढ़िया पकवान बनवा कर ले आने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। मौलवी साहब का बोल मीठा था और बच्चों के प्रति उनका व्यवहार बड़ा ही हार्दिक था। भले ही वह कैसी भी गलती क्यों न कर डालें; लेकिन क्या मजाल कि मौलवी साहब के मुंह से एक भी तेज शब्द निकले, हाथ उठाने की बात तो दूर रही! बच्चों के गुरु होने के कारण वह सारे गांव के आदरणीय और कृपा-पात्र बन गए थे। वैसे भी उनका घराना बड़ा अच्छा था और जब करीम की मृत्यु हुई थी, आधे से ज्यादा गांव साथ गया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धीरे-धीरे बरसों बीत गए। इस बीच मौलवी साहब की बीबी भी चल बसीं और करीम के नजदीक ही मौलवी साहब ने दर्द-भरे दिल से एक छोटा-सा स्मारक फातिमा बेगम के लिए भी बनवा दिया। चोट पर चोट लगी; लेकिन मौलवी साहब का मदरसा बराबर चलता रहा। दुख आदमियों को नजदीक लाता है। मौलवी साहब भी उस गांव के निवासियों के अभिन्न अंग बन गये।

कुछ और बरस इस तरह गुजरे और मौलवी साहब और सिर के दाढ़ी-मूछों के बाल सन-जैसे सफेद हो गये।

अचानक देश में सांप्रदायिकता की आग भभक उठी। चारों ओर मार-काट और लूट-पाट के अमानुषिक दृश्य दीखने लगे। हर जगह भय और आतंक छा गया। कल तक जो मित्र थे, वे दुश्मन बन गए और एक दूसरे की जान लेने पर उतारू हो गए। जिधर देखो उधर ही दर्दनाक बातें दीखने लगीं। शहरों की आग की लपटें देहातों में भी पहुंचीं और मौलवी साहब नें देखा कि उनके गांव का रुख भी बदलता जा रहा है। इससे उन्हें रत्ती भर भी चिन्ता न हुई। उसी प्यार और मुहब्बत से बच्चों को पढ़ाते और गांव-वालों के साथ पेश आते रहे।

एक रोज रात को मौलवी साहब खा-पीकर चारपाई पर बैठे हुक्का पी रहे थे कि मुखिया का लड़का आया और बन्दगी करके खड़ा हो गया। मौलवी साहब ने सहज भाव से पूछा, "क्या है, बेटा देवी ?" देवी के मुंह से सहसा बात नहीं निकली। तब मौलवी साहब ने फिर कहा, "कहो बेटे, क्या बात है ?"

देवी अब अपने को रोके न रख सका और फूट-फूट कर रोने लगा। मौलवी साहब आश्चर्य-चकित रह गये। हुक्के को एक ओर सरकाकर उन्होंने देवी को अपनी ओर खींच लिया और उसकी पीठ थपथपाते हुए बोले, "इतना दुखी होने की क्या बात है, बेटे ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देर तक देवी की हिलकी बंधी रही। सम्भला तो बोला, "मौलवी साहब, आप यहां से चले जाइए।"

"क्यों, चला जाऊं बेटे?" मौलवी साहब ने बिना किसी उद्विग्नता के शांत स्वर में पूछा।

"मैं आपके हाथ जोड़ता हूं, मौलवी साहब, आप आज ही चले जाइए। यहां के आसार अच्छे नहीं हैं। हवा ऐसी बिगड़ी है कि किसी का किसी को ऐतबार नहीं रहा। मैं आपसे क्या कहूं....कहते शरम आती है...आज हरी, लीला और पंचम सलाह कर रहे थे..."

"क्या सलाह कर रहे थे?" देवी के अकस्मात् चुप हो जाने पर मौलवी साहब ने पूछा।

"मौलवी साहब, जबान नहीं खुलती...कहते थे कि एक दिन रात को मौलवी साहब के घर पर धावा बोल दो और उन्हें..."

आगे देवी को कुछ कहने की जरूरत न थी। मौलवी साहब सब समझ गए। उनके बूढ़े चेहरे पर जरा भी चिंता नहीं झलकी और उन्होंने हंसते हुए कहा, "बेटा, इसमें हैरान होने की क्या बात है! तुम लोगों को मेरी जरूरत नहीं है, तुम मुझे नहीं चाहते तो मुझे ही अपनी फिकर क्यों हो? और सुनो, मैं तुमसे दिल से कहता हूं, तुम्हारी खुशी में मेरी अपनी खुशी है। गिरधारी से कह देना कि रात को क्यों, मैं तो दिन में ही हाजिर हूं। उसे डरने की जरूरत नहीं। जाओ बेटे, तुम चैन से सोओ। तुम्हारे मौलवी साहब को एक दिन वैसे भी..."

देवी का जी अन्दर से उमड़ा आ रहा था और मौलवी साहब बिलकुल निश्चिंत बैठे थे, जैसे देवी की बात बड़ी साधारण-सी हो। अपने को संयत करके देवी फिर बोला, "मैं आपके पैर पड़ता हूं, मौलवी साहब, आप चले जाइए। हम चार-छः जने कुछ दूर साथ चलेंगे, जिससे रास्ते में कोई कुछ कह न सके। फिर थोड़ा-सा सामान भी तो साथ ले जाना होगा। जिन्दगी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कीमती चीज है, मौलवी साहब, और जहां आपने अपनी सारी उमर मुहब्बत-ही-मुहब्बत बांटी हो, वहां कुछ होना कोई अच्छी बात नहीं है।"

"अच्छा-बुरा इस दुनिया में क्या है बेटा !" मौलवी साहब ने थोड़ा गंभीर होकर कहा, "वक्त के साथ अच्छा-बुरा भी बदलता रहता है। जो आज अच्छा है, कौन कह सकता है कि कल भी वह अच्छा रहेगा ? अपनी जरूरत के मुताबिक आदमी अच्छा-बुरा बनाता है। मैं पूछता हूं बेटा, जहां एतबार नहीं, जहां मुहब्बत नहीं, वहां जीने से क्या फायदा ! बेटा, मैं मुहब्बत का भूखा हूं। वही मुझे जिंदा रखती है। करीम और फातिमा की याद को मैंने तुम लोगों की मुहब्बत में भूल जाने की कोशिश की थी। इधर की आस गई तो फिर मुझे उन्हीं दोनों के पास जाने में क्यों देर होनी चाहिए ?"

कहते-कहते मौलवी साहब की आंखें गीली हो आईं।

देवी ने बाद में बहुतेरी मिन्नत की; लेकिन मौलवी साहब जाने के लिए राजी न हुए। उन्होंने साफ कह दिया कि देवी बेटे, मुसीबत से डरकर कायर भागते हैं और जिसकी जिंदगी की इमारत प्यार की नींव पर खड़ी हुई है, उसे डरने की जरा भी जरूरत नहीं है।

देवी चला गया और मौलवी साहब चारपाई पर लेट गए। उनके मन में भय का लेश भी नहीं था; लेकिन करीम और फातिमा की याद से उन्हें थोड़ी बेचैनी हो आई थी। वह सोचने लगे कि यह सब है क्या ? आदमी का प्यार क्या बुलबुला है, जो जरा-सी देर में फूट जाता है ? उसकी जड़ें इतनी कमजोर हैं कि जरा-सी हवा लगी कि उखड़ीं ? नफरत लेकर हम कहां पहुंचेंगे ! इस मारकाट और दुश्मनी का क्या नतीजा निकलेगा ? हम लोग अपने को तबाह कर लेंगे ! या अल्लाह !

मौलवी साहब के मुंह से एक लंबी आह निकली और एक क्षण में उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गांव की उनकी सारी जिंदगी आंखों के सामने घूम गई। सोचा-विचारी में उन्हें उस रात देर तक नींद नहीं आई।

अगला दिन शांति से बीता। मौलवी साहब का मदरसा लगा और शाम को हर दिन की तरह बच्चे अपने-अपने घर चले गए।

रात को मौलवी साहब देर तक मुहम्मद साहब की जीवनी पढ़ते रहे। प्रसंग था कि मुहम्मद साहब अकेले एक पेड़ के नीचे सो रहे हैं। निर्जन स्थान है। उनसे बैर माननेवाला एक आदमी उधर आता है, उन्हें यों अकेला पाकर खुश हो उठता है और उन्हें मारने के लिए म्यान से तलवार खींचता है। हजरत मुहम्मद निश्चिन्त भाव से सो रहे हैं और उनके चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही है। आदमी का हाथ उठता है और उठा-का-उठा ही रह जाता है। यह क्या! अरे, यह कौनसी ताकत है, जो उसका हाथ थाम लेती है?

मौलवी साहब की आंखें डबडबा आईं।.... वह मुहब्बत का असर था। आदमी अपना दिल साफ रक्खे तो दुनिया पाक है। फिर किसी को किसी से डरने की जरूरत ही क्या हो? और सच यह है कि दुश्मन तो आदमी के खुद के भीतर बैठा है।

रात काफी बीत चुकी थी, पर मौलवी साहब की आंख नहीं लगी। हजरत मुहम्मद के प्रसंग से वे इतने अभिभूत हो उठे थे। बत्ती उन्होंने बुझा दी और चारपाई पर लेट कर जाने क्या-क्या सोचने लगे।

इतने में दरवाजे पर हलका-सा खटका मालूम हुआ। वे चुपचाप लेटे रहे कि देखें क्या है। आहट होकर शांत हो गई; लेकिन दो मिनट बाद ही वह देखते क्या हैं कि धीरे से दरवाजा खुला और एक के बाद एक तीन जने भीतर घुस आए। चांदनी की रोशनी में मौलवी साहब को पहचानते देर न लगी कि आगे गिरधारी है और वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाता उनकी चारपाई की ओर बढ़ा चला आ रहा है। मौलवी साहब ने फिर भी कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नहीं कहा। ज्यों-के-त्यों लेटे रहे। गिरधारी चारपाई से कोई दो गज की दूरी पर रुक गया और इशारा करते ही साथी ने उसे कोई चीज दे दी। गिरधारी एक कदम और आगे बढ़ा। मौलवी साहब ने देखा कि उसके दोनों साथियों में एक पंचम और दूसरा लीला है। इन तीनों को उन्होंने पढ़ाया था।

गिरधारी देर तक वहीं खड़ा रहा। वह न आगे बढ़ता था, न पीछे हटता था। मूर्ति की भांति खड़ा था। उसे इस अवस्था में मौलवी साहब देर तक न देख सके। बोले, "बेटा गिरधारी, क्या सोच रहे हो? आगे क्यों नहीं बढ़ते!"

गिरधारी को काटो तो खून नहीं।

मौलवी साहब उठ कर बैठ गए। बोले, "बेटा, आते क्यों नहीं? जो तुम्हें करना है, कर लो। मैं तुम्हें रोकूं या कुछ भी कहूं तो अल्लाह मुझे दोजख में भी जगह न दे! अरे पंचम और लीला, तुम लोग इतनी दूर क्यों खड़े हो? आगे आओ बेटा और गिरधारी की मदद करो।"

गिरधारी और उसके दोनों संगी सन्न खड़े थे। गिरधारी सोचता था कि धरती फट जाय तो वह उसमें समा जाय, या आसमान टूट गिरे तो वह उसके नीचे दब जाय! हाय, राम! उसने किया क्या? नब्बे बरस के प्यार-भरे अपने मौलवी साहब का अनर्थ करने की बात सोचने से पहले वह मर क्यों नहीं गया? उसके भयंकर अपराध के एवज में भी इस फरिश्ते के मुंह से प्यार की वाणी ही निकल रही है! हाय, वह कैसा नीच है, कैसा पापी है!

मौलवी साहब ने अत्यंत सरल और स्निग्ध भाव से कहा, "बेटा गिरधारी, मुझे तो वह दिन याद आता है जब तुम मेरी गोद में खेले थे और मैंने तुम्हें अपना ही करीम मानकर पढ़ाया था। लेकिन बेटा, सच कहता हूं कि मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। इंसान को अपना फर्ज पूरा करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जो मने किया, वह मेरा फर्ज था। बेटे, तुम मेरे अज़ीज़ हो, प्यारे हो और वैसा मानकर मेरे दिल से तुम्हारे लिए सदा असीस ही निकलेगी।"

दूध-सी चांदनी में मौलवी साहब का चेहरा चमक उठा।

गिरधारी ने हाथ की चीज उठाकर एक ओर फेंक दी और आगे बढ़कर हुक्केपर से चिलम उठाकर भरने के लिए बरोसी की ओर बढ़ गया। पंचम और लीला भी चारपाई के पास आकर बैठ गए। मौलवी साहब ने उन दोनों की पीठ थपथपाई और देखा कि बरोसी के पास बैठा गिरधारी बार-बार अपनी आँखें पोंछ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ४ :

दो कौड़ी का सिक्का

चलो, बला टली। मन अब ऐसा अनुभव कर रहा है, मानों मनों का भार उस पर से उतर गया हो। जाने कितनी बार गया, लेकिन उसका मेरे प्रति कुछ ऐसा मोह था कि जाने की देर हुई नहीं कि लौट आया। मेरा मन त्रस्त हो उठा था, इसलिए नहीं कि वह कोई भारी चीज थी, बल्कि इसलिए कि उसके कारण कई बार मुझे बड़ा अपमान सहन करना पड़ा था। सुबह जब नौकर बाजार जाने लगा तो बोला कि जरा दीजिए उसे। शायद कहीं दावं लग जाय। विश्वास तो नहीं था, फिर भी उस अपमान की जड़ को मैंने काशी के हाथ में थमा दिया। थोड़ी देर पश्चात् देखता क्या हूं कि काशी हंसता-मुस्कराता चला आ रहा है। पास आकर बोला, "यह लीजिए। पूरे सोलह आने में गया और ऐसी जगह कि हजार सिर मारने पर भी लौट नहीं सकेगा।"

पूरे सोलह आने में! जीहां, पूरे सोलह आने में। आप कहेंगे कि रुपया था तो सोलह आने में चलना ही चाहिए था। लेकिन भाई साहब, मैं क्या कहूं? सोलह आने का तो क्या, वह दो कौड़ी का भी नहीं था। अव्वल दर्जे का सूरत हराम। देखो तो रुपया, परखो तो मिट्टी। किसी भी रुपये से मिला लो, रत्ती भर भी अन्तर नहीं था। जार्ज महाराज का मुकुट-धारी चित्र, सन् सब कुछ। लेकिन जहां उंगली पर टिका कर अंगूठे के बल 'खन' किया कि आपके पास वापिस। मैं आपसे क्या कहूं कि कितनों के हाथ में गया और लौटा। कई बार तो ऐसा मालूम हुआ कि उसका मुंह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काला हो गया; लेकिन वह बेहया मेरा पल्ला भला क्यों छोड़ने लगा ! जाने कहां से और कब मेरे सिर पर आ पड़ा था और उसके वास्तविक रूप की पहचान बड़ी कीमत देकर हुई। जीवन के उस अनुभव को मैं कभी भूल न सकूंगा ।

एल-एल० बी० की पढ़ाई थी कि मुसीबत ! भगवान जानता है कि तब की-सी आफत मैंने आज तक नहीं उठाई, न उठाना चाहूंगा। बी० ए० के बाद नौकरी कर लेता; लेकिन मुसीबत को तो मानव स्वयं ही आमन्त्रण देता है। साधन न थे, पर एल-एल० बी० में नाम लिखा लिया। सोचता था, वकालत चलेगी, लक्ष्मी आयेगी। पर उस दिन तक क्या-क्या देखना पड़ेगा, इसकी कल्पना भी तब मेरे मन में न उठी थी। जैसे-तैसे प्रथम वर्ष तो निकल गया; लेकिन द्वितीय वर्ष में आकर ऐसा मालूम हुआ कि गाड़ी रुक गई। आंधी का झोंका पूरे वेग से आया और मेरे पैर उखड़ते-उखड़ते जाने किस दैवी शक्ति के सहारे रुक गए।

बात सन् '३७ की है। शायद अक्तूबर का महीना था। इधर-उधर से पचास रुपये जुटा कर राम-आसरे यूनिवर्सिटी के खुलने के डेढ़ महीने पश्चात प्रयाग जा पहुंचा। रेलभाड़ा, फीस तथा दूसरे खर्चों के बाद मेरे पास कुल जमा तीन रुपये चौदह आने बचे। अचानक एक दिन कुछ मित्र आ पहुंचे और बात-की-बात में एक रुपया उड़ गया। बचे दो रुपये चौदह आने। कुछ दिन और निकले और एक दिन यूनिवर्सिटी से लौटकर बटुए में से निकाल कर देखा तो केवल एक रुपया बचा था।

"एक रुपया !"––अकस्मात् मेरे मुंह से निकल गया। पैसा भी अजीब चीज है। हो तो मुश्किल, न हो तो मुश्किल। चाह की बात छोड़िए, संग्रह की बात को भी भाड़ में जाने दीजिए, मुझे तो जीना दूभर हो रहा था। कहीं से भी पैसा आने की आशा न थी और मेरे पास सिर्फ एक रुपया बचा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आप अमीर हैं। काफी पैसा आपके पास है तो क्षमा कीजिए, आप मेरी उस समय की स्थिति को नहीं समझ सकेंगे। गरीब को समझने के लिए गरीबी चाहिए।

कुर्सी पर पड़ा बहुत-सी बात सोचता रहा। विचारों का तांता टूटा तो संध्या ढल चुकी थी।

"सोचने से काम न चलेगा और कोई राह निकालनी होगी।"—ऐसा सोच कुर्सी पर से उठ बैठा। डूबते सूर्य के अरुण प्रकाश में मेज पर पड़ा वह चांदी का टुकड़ा चमक उठा। मानो ढाढस बंधा कर कहता हो—"जब तक मैं हूं, तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है।"

इतने में पास के कमरे के लड़के आ गए। समय नहीं कटता तो वे सुबह-शाम मेरे कमरे में आ जाते हैं, या मैं उनके कमरे में चला जाता हूं। कुछ देर तक उनके साथ बातचीत होती रही। अंधेरा होने लगा तो मैंने कहा, "खाना खा आऊं।"

लड़के चले गए। ललचाई आंखों से मेज पर पड़े उस रुपये को मैंने एक बार फिर देखा। अनन्तर जेब में डाल बाजार की ओर चल दिया।

आप चाहे नाराज हों या बुरा-भला कहें, पर अपनी दुर्बलता मुझे स्वीकार कर ही लेनी होगी। भोजन न करना मुझे मंजूर है, लेकिन ऐसा-वैसा खाना मुझसे नहीं खाया जाता। लोग न जाने कैसे सड़ियल ढाबों में मजे में पेट भर आते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे बाहर दाल-साग की पतीलियों पर जितनी मक्खियां भिनकती हैं, उतनी ही भीतर भी भिनकती होंगी। गरीबी में भी मेरी उस रुचि में कोई अन्तर नहीं आया। इसी से घंटाघर के सामने चौक में बंबई वाले हलवाई की साफ-सुथरी दुकान मुझे बहुत पसंद है। प्रायः वहीं पहुंच जाता हूं।

आज भी वहीं पहुंचा। घंटाघर की घड़ी में आठ बजकर दस मिनट हुए थे। बिजली के शुभ्र प्रकाश में थालों में सजी मिठाइयां चमक रही थीं।

18610

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दुकान में घुसते ही मैंने कहा, "लड़के, चार कचौड़ियां लाओ और दो पैसे का दही ।"

कहने की देर थी कि लड़के ने कचौड़ियां और दही ला उपस्थित किया। ऐसी जगह जाकर मेरा मन प्रायः खुल जाता है। जेब में जब एक रुपया है तो फिर मन को क्या मारना !

"लड़के, कोई ताजी मिठाई है ?"

"जीहां, गुलाबजामुन, पेठा, इमरती, बालूशाही, सभी चीजें अभी की बनी हैं । बोलिए, क्या लाऊँ ? इमरती ?"

"नमकीन क्या है ?"

"समोसा, पपड़ी, मठरी, दालमोंठ, सब ताजे हैं । यहाँ तो रात का कुछ बचता ही नहीं ।"

जैसे आगे जो कुछ होगा, देखा जायगा, मैंने कहा, "दो गुलाबजामुन, दो समोसा लाओ ।"

लड़का चला गया और घड़ी भर में दो तश्तरियों में मांगी चीजें सामने लाकर रख दीं।

बराबर की कुर्सी पर एक बंगाली महाशय खाने में मग्न थे ।

"यह रसगुल्ला कैसा है ?"—उनकी तश्तरी की ओर मैंने संकेत करके पूछा ।

मुंह उनका इतना भरा था कि एक साथ कुछ बोल न सके। जब जरा खाली हुआ तो बोले, "बोहोत अच्छा ।"

"लड़के, दो रसगुल्ले लाओ ।"

जेब में रुपया है तो नीयत भर लेनी चाहिए। ऐसा भी क्या कि मिठाई की दुकान से आगे से निकलो और मन में इतनी अतृप्ति हो कि देखते ही लार टपकने लगे ! पर कहीं रुपया...जाने कहां से विचार मन में उठा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ओर समूचे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। "नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" एक रसगुल्ले को मुंह में डालते हुए मैंने सोचा।

भीतर से फिर किसी ने कहा, "क्यों जी, खराब हुआ तो फिर तुम क्या करोगे?" अंदर से एक साथ मानों एक हजार स्वर झंकार उठे, "हां, बोलो, क्या करोगे ?"

भयभीत नेत्रों और शंकित मन से मैंने इधर-उधर देखा। मन नियन्त्रण की शृंखला को तोड़ उन्मुक्त आकाश में उड़ जाना चाहता था।

"ऊंह, होना होगा सो हो जायगा।"—और मैं फिर खाने में लग गया।

थोड़ी देर में खा-पीकर उठा। बंगाली महाशय अब भी चिपके थे। नल की टोंटी पर हाथ धोकर मुंह पोंछते हुए मैंने पूछा, "कितने पैसे ?"

दुकानदार ने हिसाब लगाया। बोला, "साढ़े सात आने।"

जेब से रुपया निकाल कर मैंने थाल में पटका नहीं। दुकानदार के हाथ में थमा कर कहा, "बाकी पैसे लौटाओ।"

रुपया तो दे दिया, पर मन एकबारगी कांप उठा। दुकानदार ने इधर-उधर पलटकर उसे एक हाथ से देखा और दूसरे से उसने संदूकचीके ढकने को आधा उठा लिया। जान-में-जान आ गई। मन-ही-मन मैंने भगवान को धन्यवाद दिया। मुस्कराते हुए सोचा, "देखो, व्यर्थ की चिंता थी न!"

इतने में दुकानदार ने रुपये को परखने के लिए उछाला। यह अंतिम परीक्षा थी। यह क्या ? रुपया मेरे सामने, और दुकानदार कह रहा था, "दूसरा दो।"

साहस बटोरकर मैंने कहा, "इसमें क्या बात है ?"

"बात क्या होगी ? खराब है।"

"खराब ?"

"हां-हां, खराब। दो कौड़ी का।"—दुकानदार ने झुंझलाकर कहा।

"इसमें आखिर खराबी क्या है ?"—मैंने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"खराबी ? मिट्टी का है ।"

शायद दुकानदार पहले से ही भींका वैठा था । इसी से अंतिम वाक्य कहते-कहते उसका स्वर बड़ा तीव्र हो गया और जब मैंने कहा कि मेरे पास दूसरा रुपया नहीं है तब तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। बोला, "नहीं है तो इस दो कौड़ी के सिक्के को जेब में डालकर मिठाई उड़ाने के लिए क्या मेरी ही दुकान रही थी ? लाओ, मेरे दाम दो ।"

दबी जबान में मैंने कहा, " लालाजी, मेरे पास बस यही एक रुपया है ।"

दुकानदार आग-बबूला हो गया । बोला, "मैं कुछ नहीं जानता । मेरे दाम दो ।"

यह देखकर कि दबने से मामला बिगड़ा जा रहा है, मैंने जरा तेजी के साथ कहा, "नहीं है तो मैं क्या करूं ? मुझे यह पता नहीं था कि यह रुपया ऐसा है ।"

"तो फिर मैं ही क्या करूं ? आप जैसे एक-दो आदमी रोज आ जायं तो फिर चल गई दुकान ! मेरे दाम दो जी ।"

मैंने कहा, "लालाजी, इतनी बड़ी दुकान लिये बैठे हो और ऐसी बात करते हो ? न हो तो अपने दामों के बदले में इस रुपये को रख लो। दाम चुका कर ले जाऊंगा ।"

हम लोगों की आवाज सुनकर दस-पांच राहगीर जुड़ आए । वे कभी मुझे घूर कर देखते थे तो कभी दुकानदार को और फिल्म के अभिनेता की भांति दुकानदार दर्शकों को प्रभावित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव-भाव के साथ अपनी बात कहे जा रहा था —"देखा, ये हैं बाबू साहब ! मुफ्त में मिठाई उड़ाने चले हैं ,जैसे मेरे यहां उनके बनाने में दाम ही नहीं लगते !"

दुकानदार की बदतमीजी मेरे लिए असहृय होती जा रही थी। पास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खड़े सज्जन से मैंने कहा, "देखिए इस दुकानदार की बदमाशी ! मैं कहता हूं कि तुम रुपया रख लो। लेकिन वह आपे से बाहर हुआ जा रहा है।"

वह सज्जन कुछ कहते कि दुकानदार उबल पड़ा--"आपे से बाहर तुम हुए जा रहे हो या मैं ? पैसा का पैसा नहीं देते और ऊपर से आंखें निकालते हो ?"

राहगीरों में सभी तरह के लोग थे। दस-पांच इधर-उधर के दुकानदार भी आ गए थे। उनसे कैसे कहता कि भाई, मैं गरीब हूं और दया का पात्र हूं ? एक उनमें से बोला, "झगड़ा बढ़ाने से क्या फायदा ? चलिए, खतम कीजिए।"

सच कहता हूं आपसे, जीवन में इतना अपमान मुझे कभी नहीं सहन करना पड़ा। गरीबी ने कुछ ऐसी हीनता मन में ला भरी थी कि क्या कहूं, अन्यथा बात क्यों इतनी बढ़ पाती !

इतने में भीतर से वही बंगाली महाशय नाक-भौं सिकोड़ते हुए बाहर आए। बोले, "यह क्या हल्ला मचा रखा है ?"

मेरी आंखें झुक गईं। छुरी-सी पैनी आवाज को और ऊंची करके दुकानदार बोला, "क्या कहूं बंगालीबाबू, ऐसे-ऐसे लोग चले आते हैं कि खा-का-खा लिया और पैसे देने की बात आई तो दिखाते हैं दो कौड़ी का रुपया। (मेरी ओर देखकर) वाह साहब, वाह !"

बंगालीबाबू ने मिनट भर मुझे और शायद मुझसे अधिक मेरी बेबसी को देखा।

"कितने पैसे चाहिए ?"

"साढ़े सात आने।"

"इतने पर ही यह शोर मचा रखा है ?"

बंगालीबाबू के नेत्रों में सहानुभूति देखकर मुझे कुछ ढाढस बंधा। परदेस में कौन अपना होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"गाहकों के साथ कहीं ऐसा बर्ताव किया जाता है ? आज नहीं था तो कल दे जाते।"

दुकानदार ने कहा, "बंगाली बाबू..."

"नहीं, हम कुछ नहीं सुनना चाहता। हम अब तुम्हारी दुकान पर कभी नहीं आयगा।" इतना कहकर उन्होंने बटुआ खोल उसमें से एक रुपया निकाल कर दुकानदार के आगे फेंक दिया--"लो, अपने साढ़े सात आने। तुम लोग बड़े पाजी हो।"

दुकानदार ने रुपया उठा लिया।

अपने उस उदार दाता को धन्यवाद देता हुआ मैं चला गया।

यह सब इसी रुपये की बदौलत हुआ और तब से यह बराबर मेरे पास बना था। कई बार तो जी में आया कि इसे उठाकर कहीं फेंक दूं, लेकिन गरीबी ने हर बार हाथ रोक लिया। आज उससे छुटकारा पाकर मेरा मन बहुत ही आनंदित हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ५ :

फ़कीर की दुआ

सहस्रधारा के निकट उस निर्जन पार्वत्य प्रदेश में एक छोटी-सी झोंपड़ी देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वन्य जंतु जहां स्वाधीनता-पूर्वक विचरण करते हों और जहां दिन में भी रात्रि की-सी निस्तब्धता व्याप्त रहती हो, वहां घर बसाने का कोई क्या सोचकर साहस करेगा? हम लोगों की उत्सुकता बढ़ी और हमारे पैर अनायास ही उस झोंपड़ी की ओर मुड़ गए। पास पहुंचे तो देखते क्या है कि बाहर छप्पर के नीचे दो जनीं, जिनमें से एक कोई पचास-पचपन की होगी, दूसरी बीस-बाईस की, जूते सीने में लगी हैं। दो आदमियों को अपनी ओर आते देख सिर उठाकर उन्होंने एक बार हम लोगों की तरफ देखा और फिर सिर झुकाकर पूर्व-वत् काम में लग गईं। जब हम लोग उनके नजदीक जा खड़े हुए तब भी उन्होंने निगाह तक नहीं उठाई, जैसे कि उनके सामने बड़ा भारी काम है और हमसे बात करना तो दूर, हमारी ओर देखने का भी उन्हें अवकाश नहीं है। उनके हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे, मानों उन्होंने निश्चय कर लिया हो कि जोड़ी पूरी करके ही थमेंगे।

उन दोनों की इस अशिष्टता से मुझे बड़ी झुंझलाहट हुई। देखो तो इनकी बात! घर पर दुश्मन भी आ जाता है तो एक बार उससे भी पानी की पूछ लेते हैं और ये हैं कि मुंह उठाकर हमारी ओर देखतीं तक नहीं! यह सोच मन में कुछ ग्लानि-सी भी पैदा हुई और मित्र को चलने के लिए कहने ही वाला था कि इतने में वह बोल उठे, "माई, थोड़ा पानी मिलेगा?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छोटी कुछ बोले कि तब तक बड़ी ने अत्यंत उपेक्षा भाव से कहा, "तुम लोग जाओ। यहां पानी-वानी कुछ नहीं है।"

बावारे बाबा! इतना अभिमान! इस रुखाई पर मित्र की आकृति, जो अबतक शांत दिखाई दे रही थी, किंचित विचलित हो उठी। दोनों नारियों को उन्होंने क्षणभर कौतूहल की दृष्टि से देखा और बोले, "हम परदेसी हैं, माई। इतनी दूर चलकर आए हैं। तुम्हारे घर में प्यासे के लिए दो घूंट पानी भी नहीं है!"

जूते के सलमे को दांत से काटती हुई छोटी बोली, "हम मोची हैं। पानी नहीं पिला सकते। जाओ, उस झरने में पी लो।"

अपने सिर के लंबे केश और दाढ़ी की ओर इशारा करते हुए मित्र ने कहा, "यह तुम क्या कहती हो, बहन! हम तो साधू हैं, हमारे लिए क्या मोची और क्या पंडित, सब इन्सान एक से हैं।"

"होंगे, पर हम तुम्हें पानी नहीं पिला सकते। किसी का धरम बिगाड़ने से पाप लगता हैं। और फिर झरना कुछ दूर थोड़े ही है।"—लड़की एक सांस में कह गई।

"पाप!" कहकर मित्र मुंह फाड़े रह गए और एक दार्शनिक की भांति उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे।

बातचीत का सिलसिला इस प्रकार चल पड़ते देख वयस्का के माथे पर कईएक सलवटें पड़ आईं। हम लोगों से कैसे ही पीछा छूट जाय, यह सोचकर उसने छोटी को बोलते समय बीच में रोका नहीं था; लेकिन जब बात फैलने लगी तो वह तनिक नाराज-सी होकर बोली, "तुम यहां से टलते क्यों नहीं? आखिर चाहते क्या हो? हमारा सिर कट जायगा तब तुम्हें चैन पड़ेगा?"

बात उसने बड़ी तेजी से कही थी। उसमें रोष तो था ही, जिसका अर्थ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हम लोग पूरी तरह से नहीं समझ सके और अवाक् उसकी ओर देखते के-देखते ही गए ।

दोनों के हाथ जोड़ी पर और तेजी से चलने लगे; लेकिन मैंने अनुभव किया कि उनके मन में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ है ।

मित्र आंगन में पड़ी चारपाई पर बैठ गए और बोले, "मां, तुम्हारी बात को हम ठीक तरह से नहीं समझ पाए। सिर कटने का क्या मतलब ? हम लोग. . . "

बीच में ही बात काटकर बुढ़िया बोली, "तुम लोगों से कह दिया कि चले जाओ तो चले क्यों नहीं जाते ? हम दूसरे आदमी से बात करना पसन्द नहीं करतीं और न हमारा आदमी ही इसे अच्छा समझता है। शाम हो चली है और अब वह आता ही होगा। अगर उसने हमें तुमसे बातें करते देख लिया तो जिंदा नहीं छोड़गा । समझे !"

सारा रहस्य अब हमारी समझ में आ गया। वास्तव में दोष उनका नहीं था। युग-युगांतर से उनकी परम्पराएं, सामाजिक नियम, धार्मिक बन्धन कुछ ऐसे ही चले आ रहे हैं और चूंकि वर्तमान विचारधाराओं से वे दूर हैं, उनके विचार आज भी ठीक वैसे ही पुरातन-पन्थी हैं, जैसे वर्षों पहले थे। पर मानव के प्रति कितना भारी अविश्वास उसकी वाणी में था ! मैंने कहा, "मां, हम तो तुम्हारे बेटे हैं। क्या तुम्हारे आदमी अपने बेटे. . . "

बात पूरी भी न हो पाई कि इतने में चारपाई पर पड़ी बच्ची एक साथ चीख़ उठी और हम सबका ध्यान उसी ओर चला गया। मैंने पूछा, "यह किसकी बच्ची है ?"

मेरे इस प्रश्न पर उस लड़की के चेहरे पर हठात् मातृत्व की एक झलक दौड़ गई और न चाहते हुए भी उसकी निगाह मेरी ओर उठ गई। बच्ची का रोना बराबर चल रहा था। हमारी बातचीत से वृद्धा अब कुछ

Sri Pratap Singh Library Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सरल हो आई थी। बोली, "यह मेरी बहू है।...अरी, देखती क्या है! उसे उठा क्यों नहीं लाती ?"

सुतारी को जहां-की-तहां जूते में उरस कर बहू उठी और बालक को गोद में लेकर फिर वहीं आ बैठी। मां का दूध मिल जाने से बच्ची चुप हो गई।

बच्ची अत्यंत दुबली-पतली थी। उसे देखकर मित्र ने पूछा, "यह कितनी बड़ी है, बहन ! बड़ी लट रही है !"

कोई कितना ही कठोर क्यों न हो, लेकिन अपनी संतान के प्रति दिलचस्पी रखने वाले व्यक्ति के साथ उदासीनता का व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। बहू बोली, "यह मुन्नी ढाई बरस की है; लेकिन इसके पैर इतने कमजोर हैं कि यह खड़ी ही नहीं हो पाती। बहुतेरा इलाज किया है, फायदा नहीं होता। हम लोग बहुत परेशान हैं।"

मित्र बोले, "तुम्हें अब परेशान होने की जरूरत नहीं है। हम फकीर हैं। ऐसी दुआ दे देंगे कि तुम्हारी मुन्नी जल्दी ही पैदल चलने लगेगी और मोटी-ताजी हो जायगी।"

मित्र के इस आश्वासन से सास-बहू इतनी आशान्वित हो उठीं कि हर्ष की एक लहर हम लोगों के देखते-देखते उनके चेहरे पर दौड़ गई। सास ने काम बन्द कर दिया। बोली, "बेटा, हमारी मुन्नी अच्छी हो जाय तो जो मांगो, हम देने को तैयार हैं। लड़की की जात है। अगर कोई भी खराबी रह गई तो उसका ब्याह होना मुश्किल हो जायगा। परमात्मा लड़की किसी को भी न दें।"

"तुम बिलकुल फिकर न करो, माजी। तुम्हारी मुन्नी जरूर अच्छी हो जायगी और थोड़े ही दिनों में दौड़ लगाने लगेगी।"

मित्र की बात पर मुझे मन-ही-मन हंसी आ रही थी, पर मैं जानता था कि विश्वास में बड़ी शक्ति है और यदि सास-बहू का विश्वास फ़कीर की दुआ पर जम गया तो बहुत संभव है कि उनकी बच्ची को आराम हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अब उन दोनों के व्यवहार में कितनी आत्मीयता आ गई थी, इसका अनुमान सहज ही नहीं किया जा सकता। अपनी बिटिया की खातिर उन्होंने अधरम के विचार को तिलांजलि देकर हमें पानी पिलाया और खाने की पूछी। वैसे उन्हें यह भी भरोसा हो गया था कि हम लोग भले आदमी हैं और उनके आदमी हमसे बातचीत करके खुश ही होंगे।

मित्र ग्राम-गीतों के संग्रह का काम करते हैं। जहां जाते हैं वहीं के कुछ-न-कुछ प्रचलित लोकगीत लिख लाते हैं। यहां पर भी उन सास-बहू की कृपा से उन्हें कई अत्यंत सुन्दर और भावपूर्ण गीत प्राप्त हुए।

चलने के पूर्व मित्र ने बच्ची को गोद में ले लिया और देर तक उसे छाती से लगाये रहे। मां और दादी दोनों गद्‌गद् हो उठीं। उनकी निगाह मित्र के मुंह पर जमी थी और उनके चेहरे पर स्पष्ट दीख पड़ता था कि उन्हें इस बात का विश्वास हो गया है कि उनकी बच्ची स्वस्थ हो जायगी और उसके लिए उन्हें अब विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

थोड़ी देर ध्यानस्थ रहने के पश्चात् मित्र ने दो बार बच्ची का चुम्बन लिया और बोले, "बेटी, अच्छी हो जाना यह फ़कीर की दुआ है। भगवान उसे झूठा नहीं होने देंगे।" बच्ची खिलखिलाकर हंस पड़ी।

जब हम लोगों ने विदाई ली तो सास-बहू दोनों की आंखें भर आईं। मन के तूफान को भीतर ही रोक कर सास ने कहा, "बेटा, अब कब आओगे? जरूर आना।"

"अच्छी बात है।" कह कर हम लोग वहां से चले आए।

लगभग दो वर्ष बाद पुनः सहस्रधारा जाने का सुयोग मिला तो मित्र साथ नहीं थे। बहुत डरते-डरते मैंने उस झोंपड़ी के आंगन में पैर रक्खा। भय था कि कहीं मित्र की बात झूठी न हुई हो। लेकिन आंगन में पहुंचते ही मैंने देखा कि बच्ची खेल रही थी। मुझे देखते ही वह अपनी मां के पास भाग गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सास-बहू ठीक उसी प्रकार जूते सीने में संलग्न थीं, जैसे दो वर्ष पूर्व मैंने देखा था। मुझे पहचानने में उन्हें थोड़ी देर तो जरूर लगी; लेकिन पहचान लिया। वृद्धा पर अब और अधिक सफेदी और बुढ़ापा आ गया था। लेकिन बहू ज्यों-की-त्यों थी। मुझे देखकर सास बोली, "वह फकीर साहब कहां हैं? उनकी मेहरबानी से हमारी मुन्नी ठीक हो गई। उनसे मिलो तो कह देना कि हम जिन्दगी भर उनके अहसानमन्द रहेंगे।"

जीवन के जिन क्षणों में मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ है, उनमें से एक क्षण यह भी था। इस आनन्द में हम तीनों ने ही भाग लिया। पर मां के आनन्द की कल्पना कौन कर सकता है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ६ :

आत्म-बोध

कुण्डलपुर के यशस्वी राजा सिद्धार्थ की मृत्यु के कई वर्ष बाद की बात है। युवराज वर्द्धमान घर-गिरस्ती और राज-पाट को छोड़ वन में चले गए थे और कुण्डलपुर के सिंहासन पर उनका ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्द्धन आसीन हो गया था। युवराज के नगर छोड़ देने पर चारों ओर अशान्ति फैली हुई थी।

उन्हीं दिनों कनखल तापसाश्रम में बड़ा आतंक छा गया। वर्षों से निवास करने वाले तपस्वी आश्रम छोड़-छोड़ कर अन्यत्र बसने जाने लगे। भला कौन उस आश्रम के समीप रहने वाले विषधर की दृष्टि से भस्म हो जाना चाहता! तपस्वी सामान उठाकर चलते और चर्चा करते जाते थे। कोई कहता—"भैया, जंगलों में रहते-रहते मेरी उमर बीती है; लेकिन ऐसा अजगर मैंने कभी नहीं देखा।"

दूसरा कहता—"ओफ़, साँप है कि आफत! जिसकी ओर वह एक बार निगाह डाल देता है, वह वहीं भस्म हो जाता है। क्या मजाल कि एक साँस भी तो ले ले!"

तीसरा कहता—"सच कहता हूं, आंखों देखी बात है। वहां (उंगली से संकेत करके) वह तपस्वी बैठता था न? बिचारा क्षणभर में भस्म हो गया। उस भुजंग के आगे किसी की नहीं बसियाती!"

और पगडंडी के सहारे विलाप करते-करते एक स्त्री मृत-प्राय हो चली थी। उसका चार-पांच बरस का अबोध बालक उसकी छाती पर चढ़ा उसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूखे स्तन का पान कर रहा था और दूध न पाकर चीख मार-मार कर रो उठता था। स्त्री बेसुध-सी पड़ी थी। रो रही है, बिलख रही है, इसका भी उसे ध्यान नहीं था। रह-रह कर एक ही ख़याल उसे आता था। कि कैसे वह जरासी देर में सधवा से विधवा बन गई। उसी अजगर ने तो उसके पति को राख कर दिया। वे लोग आश्रम से दूर अपनी छोटी-सी कुटिया में आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे थे; लेकिन अभागे से वह सुख न देखा गया!

असल बात यह थी कि उस तापसाश्रम के पास एक सर्प इन दिनों आ बसा था। उसका विष इतना तीव्र था कि जिसकी ओर वह एक बार देख भी देता, वह वहीं जलकर राख हो जाता। आश्रम के कई तपस्वी उसके शिकार बन गए। जो बचे उन्होंने उचित समझा कि आश्रम छोड़ दें और किसी दूसरे स्थान पर जा बसें। वे आश्रम छोड़-छोड़ कर जाने लगे और पथिकों ने भी उस रास्ते से आना-जाना छोड़ दिया। थोड़े दिनों में वहां भयंकरता व्यापने लगी।

× × ×

संध्या होने को थी। वर्द्धमान वन में भ्रमण करते उसी मार्ग पर आ गए, जिस पर कुछ आगे चलकर चंडकोसिया की बिवर थी। लोगों ने उन्हें सांप का विस्तृत हाल सुनाया और आग्रह किया कि वह उस मार्ग पर आगे न बढ़ें; लेकिन वर्द्धमान ने एक न सुनी। उसी मार्ग पर चलते गए, चलते गए।

सांप की बिवर आ गई और वर्द्धमान उसी के ऊपर ध्यानावस्थित हो गए।

लोग डर के मारे दूर हट गए। कौन था जो वहां ठहर कर अपने इष्टदेव की उस विषधर से रक्षा करने का साहस करता! वर्द्धमान तनिक भी भयभीत न हुए और शान्ति-पूर्वक ध्यान में लीन रहे।

कुछ देर बाद सर्प अपने बिल से निकला और अपनी बिवर पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक आदमी को बैठा देख कर क्रोध से लाल हो उठा। उसने कई बार अपनी जीभ भीतर-बाहर की और विषभरी आंखों से उस मूर्तिवत् बैठे व्यक्ति की ओर देखा; पर उस असाधारण मानव का कुछ भी न विगड़ा।

सर्प ने देखा कि उसकी वह दृष्टि, जिसके आगे कभी कोई भस्म होने से नहीं बचा, उस आदमी पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ सिद्ध हो रही है तो उसका क्रोध और बढ़ गया। आंखों से चिनगारियां बरसने लगीं और उसने कई बार अपना फन धरती में मारा, जैसे अपने भीतर का क्रोध और अपनी बेवसी उससे सही नहीं जा रही थी।

फिर वह आगे बढ़ा और जोर से उसने वर्द्धमान के पैर पर अपना मुँह मार दिया। क्षणभर रुका, मानों देखना चाहता था कि उसका शिकार अब भस्म हुआ, अब हुआ। लेकिन वर्द्धमान ज्यों-के-त्यों समाधिस्थ रहे, जैसे सर्प की शक्ति और कोप का उन्हें किंचित भी आभास न हो!

सर्प अपनी असमर्थता पर खीज उठा। उसने झुंझला कर बार-बार वर्द्धमान के पैर पर मुँह मारा, किन्तु जरा-सा रुधिर निकलने के अतिरिक्त वह उन्हें कोई कष्ट न पहुंचा सका।

इतने में वर्द्धमान की समाधि टूटी। उन्होंने देखा, सामने एक सर्प क्रोध से लाल अपनी विवशता पर खीजता हुआ खड़ा है। बोले—"क्रोधित क्यों होते हो, ओ सर्पदेव ? आओ, लो काट लो न ?"

चंडकोसिया चुप ! वह क्या कहे ? क्या यह उसकी पराजय नहीं है ?

वर्द्धमान ने फिर कहा—"ओ, नागराज ! किस द्विविधा में हो ? मैं तुम्हारे सामने हूं। लो, जहां चाहो काट सकते हो।"

चंडकोसिया फिर भी चुप ! उसकी शक्ति उस अनंत बलशाली महापुरुष के सामने कितनी सीमित है !

वर्द्धमान ने कुछ ठहरकर कहा—"तुम किस सोच में हो ? मैं तैयार हूँ। तुम मुँह मार सकते हो। एक नहीं, जितने चाहो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चंडकोसिया ने लज्जा से सर झुका लिया। बोला, "भगवन्, मुझे क्षमा कीजिए। मैं अपराधी हूँ।...."

वर्द्धमान ने बीच ही में रोककर कहा, "हैं-हैं, ऐसा न कहो, नागदेव! तुम शक्तिमान हो! तुमने अगणित व्यक्तियों को अपने तेज-बल से परास्त कर दिया है।"

चंडकोसिया अब क्या करे? बोला, "हे प्रभु, मुझे दण्ड दीजिए। मैं क्षमा करने योग्य नहीं हूँ।"

और वर्द्धमान के चरणों में उसने सिर डाल दिया।

वर्द्धमान ने उसे उठाया। बोले, "बन्धु, यह दीनता कैसी! उठो, और गांठ बांधलो कि भविष्य में कभी किसी को कष्ट न दोगे!"

चंडकोसिया ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा।

वर्द्धमान ने कहा, "उठो-उठो, अपने आत्मस्वरूप को पहचानो, मनमें दया रखो और मन से, वचन से तथा कर्म से, जहां तक हो सके, कभी किसी को दुख मत पहुंचाओ।"

चंडकोसिया का अन्धकार दूर हुआ। वर्द्धमान की वाणी से कृत-कृत्य होकर बोला, "भगवन्.... "

और सिर झुका-झुका कर उसने अनेक बार वर्द्धमान के सदुपदेश के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। कहा कि भगवन्, तुमने मुझे आत्म-बोध कराया। मैं तो मूर्ख था, निरा अज्ञानी।

वर्द्धमान ने अशीर्वाद दिया और वह अपनी बिवर में चला गया।

उस दिन से फिर कभी किसी ने चंडकोसिया को किसी को सताते नहीं पाया। बिवर से चुपचाप निकलता था और मनुष्यों के साथ भाई जैसा व्यवहार करता था।

कुछ दिनों में उस उजड़े स्थान पर फिर तपस्वी आ बसे और वहां का जीवन पूर्ववत् चलने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ७ :

वतन की मुहब्बत

पूर्व निश्चय के अनुसार छ: बजते-बजते सुधीन्द्रबाबू आ पहुंचे। बोले, "घर में क्या बैठना ! चलो, कहीं बाहर ही घूम आवें। इतवार है, सो दफ्तर की भी चिन्ता नहीं।"

सुधीन्द्र का यह प्रस्ताव मुझे पसन्द आया और हम लोग घर से निकल पड़े। बरसात के दिन थे, लेकिन उस समय बादल साफ थे। मौसम सुहावना प्रतीत होता था।

किधर चलें ?" चलते-चलते सुधीन्द्र ने पूछा।

"जिधर जी में आवे। न हो तो चलो, जमुना के पुल की तरफ चलें। नदी में बाढ़ आ रही है।"

लालकिले के निकट से पक्की सड़क छोड़ हम लोगों ने कच्चा रास्ता पकड़ा और कतिपय सीढ़ियां उतर शहर के परकोटे का फाटक पार कर बस्ती से बाहर हो गए। पुल वहां से अधिक दूर नहीं था। मील भर होगा। मजे में चहलकदमी करते वहां पहुंच गए।

बाढ़ यद्यपि पिछली संध्या जितनी नहीं रही थी, फिर भी उसका रूप इस समय भी काफी डरावना था। लोगों का कहना था कि बरसों बाद ऐसी बाढ़ आई है। जाने किस पापी के पाप फले हैं। कल शाम जब हम आए थे तब तो मेला लगा था। छप्पर और बहुत सी चीजें प्रवाह में बही आ रही थीं और उससे उस अनन्त जल-राशि का रूप और भी भयंकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जान पड़ता था। देख कर शरीर में बिजली-सी दौड़ जाती थी। पुल के खंभे थोड़े से बचे थे और जल छत का स्पर्श करने वाला था। उस बाढ़ में हजारों की जानें और लाखों की संपत्ति जमुनामैया ने स्वाहा कर डाली थी।

पुल के छोर पर थोड़ी देर खड़े हो कर हम लोग पानी की ओर देखते रहे, फिर धीरे-धीरे आगे पुल पर बढ़ गए। बीच में पहुंचकर हम लोगों को सूझा क्या कि पुल की रेलिंग पकड़ कर बन्दर की भांति कूदते-फांदते नीचे खंभे पर उतर गए।

"आदमी के दिमाग को देखो।" बैठते हुए मैंने कहा, "कैसी-कैसी चीजें उसने बना डाली हैं! इस लंबे-चौड़े पुल पर रेल आती है, मोटर-तांगे दौड़ते हैं, लेकिन क्या मजाल कि पुल धोखा दे जाय!"

सुधीन्द्र मुस्कराये। बोले, "आदमी की क्या पूछते हो! यह पुल क्या है, उसने तो ऐसे-ऐसे काम कर डाले हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। आसमान में बेखटके यान उड़ते हैं, सागर का वक्ष चीरते जहाज निरापद दौड़ते हैं, घर बैठे दुनिया के कोने-कोने की खबरें हमारे पास आ जाती हैं! यह सब...."

सुधीन्द्र की बात बीच में ही कट गई। ऊपर से किसी ने कड़क कर कहा, "नीचे कौन बैठा है?"

निगाह उठाई तो देखा कि खाकी वर्दी पहिने एक सिपाही खड़ा है। हम लोगों के ऊपर देखते ही बोला, "वहां किसके हुक्म से बैठे हो?"

सिपाही की अकड़ को देखकर मुझे हंसी आ गई। हंसते हुए कहा, "अपने हुक्म से।"

मेरा इतना कहना था कि सिपाही का पारा एकसाथ चढ़ गया—"बड़े लाटसाहब आए हो जो अपने हुक्म से बैठे हो! चलो, ऊपर चलो!"

सुधीन्द्र ने कहा, "इतना बिगड़ते क्यों हो मियां?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हाथ के डंडे को रेलिंग पर मारते हुए वह बोला, "चलो, ऊपर चलो।"

"लो, आते हैं। देखें, तुम क्या करोगे !"

इतना कह कर हम लोग तार पकड़कर कूदते-फांदते जैसे नीचे गए थे वैसे ही ऊपर चढ़ आए। सिपाही से सटकर खड़े होकर मैंने कहा, "लो, करो, क्या करते हो ?"

सिपाही ढीला नहीं पड़ा। उसी कड़ाई के साथ बोला, "तुम लोग वहां क्यों गए ?"

"जी में आया इसलिए।" सुधीन्द्र ने तत्काल उत्तर दिया।

"तुम्हें मालूम नहीं कि वहां जाने की मुमानियत है ?"

"होगी। हमें क्या पता ! हम क्या कोई ज्योतिषी हैं !"—मैंने उत्तर दिया।

"जनाब, हम लोगों की नौकरी ही यहां इस काम की है। समझे ?"

"तो फिर जब हम उतरे थे तब तुमने रोका क्यों नहीं ?"

मेरी इस बात से सिपाही तनिक विचलित-सा हुआ। शायद उसने सोचा कि हम लोगों ने नीचे जाकर अपराध किया सो तो किया ही, लेकिन बिला रुकावट वहां पहुंचे, इसका दोष उस पर भी तो है। सम्हलकर फिर बोला, "हम लोगों के दो गारद, जनाब, दिन-रात पुल के दोनों छोरों पर बने रहते हैं।"

मेरी बात ने सिपाही को थोड़ा हैरान कर दिया है, यह हम दोनों से छिपा न रह सका। मैंने कहा, "उससे क्या होता है। चिलम पीने, ताश खेलने और सोने से फ़ुरसत मिले तभी तो आप लोग ड्यूटी करें। है न ?"

सिपाही कुण्ठित हो उठा। बोला, "खैर, वह सब देखा जायगा। चलो, साहब के पास चलो। मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूं।"

सिपाही का इतना कहना था कि सुधीन्द्र का चेहरा मारे गुस्से के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तमतमा उठा। बोले, "बड़े आए हो गिरफ्तार करने वाले ! मियां, खुद जेल की हवा खाओगे, जेल की। तुमने समझ क्या रखा है।"

असल में सिपाही ने सोचा था कि जरा धमकावेगा तो हम लोग चुपचाप रुपया-अठन्नी जेब से निकाल कर उसके हाथ में थमा देंगे और माफी मांगेंगे। घुड़की देते हुए तब वह कहेगा कि देखो, तुमने काम तो ऐसा किया है कि कम-से-कम छ: महीने की काटते, लेकिन खैर, छोड़े देता हूं। आइंदा इधर आने का नाम भी मत लेना। जाओ। लेकिन बात कुछ और ही हुई। जब उसने देखा कि गिरफ्तारी की बात से भी हम लोग नहीं घबराए तो तो वह स्वयं कुछ घबरा-सा गया। बोला, "अच्छी बात है। चलो, डेरे पर चलो।"

मैंने कहा, "बेकार का झगड़ा बढ़ाने से कोई फायदा नहीं। अपना काम देखो।" लेकिन सिपाही के लिए अब वह मान-अपमान का प्रश्न बन गया था। बोला, "मैं कुछ नहीं जानता। साहब के पास तुम्हें चलना ही पड़ेगा।"

हम लोग बिला किसी हिचकिचाहट के आगे-आगे चल दिए। पीछे-पीछे सिपाही। पुल के इस किनारे पर वास्तव में एक गारद पड़ा था, जिसे जाते समय उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए हम लोग आगे बढ़ गए थे। उस समय यह सोचने की हमने आवश्यकता ही न अनुभव की थी कि वह वहां क्यों पड़ा है। सड़क के किनारे एक ओर को डेरा लगा था, जिसमें चारपाई पर पड़ा एक हिन्दुस्तानी साहब कोई किताब पढ़ रहा था।

दरवाजे पर जाकर सिपाही ने फौजी सलाम बोला। बूटों के लोहे के नालों से एक साथ 'खटाक्' हुई। अन्दर से आवाज आई, "क्या है ?"

हाथ को झटके के साथ नीचे डाल कर सिपाही ने कहा, "हुजूर, ये दो आदमी पुल से उतर कर नीचे खंभे पर बैठे थे।"

खेमे से सटी एक चारपाई पड़ी थी। हम लोग उसी पर बैठ गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"कहां हैं ?" भीतर से फिर आवाज आई ।

सिपाही ने पुनः फौजी सलाम बोला और हम लोगों की ओर बढ़ा; लेकिन ज्योंही उसने देखा कि हम लोग मजे में चारपाई पर बिराजे हैं तो उसकी झल्लाहट का ठिकाना न रहा । बोला, "किसके हुक्म से चारपाई पर बैठ गए ? खड़े हो जाओ ।"

जब हम दोनों में से कोई भी टस-से-मस न हुआ तो वह और झुंझलाया । बोला, "खड़े होते हो या नहीं ?"

हम दोनों चुप ।

सिपाही का गर्जन सुनकर उस हिन्दुस्तानी साहब ने खेमे का एक हिस्सा जरा ऊंचा करके बाहर झांका । बोला, "आप लोग खंभे पर बैठे थे ?"

मैंने कहा, "जीहां ।"

"अच्छा कालेखां, इन्हें थाने ले जाओ । वहां जाकर इनकी तलाशी लेना और फिर पता मालूम करके इनके घर की तलाशी का वारण्ट निकलवा देना । समझे ?"

"जो हुक्म !" और कालेखां ने फिर तनकर सलाम बोला । (हमारी ओर घूमकर) "चलो, उठो ।"

"आप लोग रहते कहां हैं ?"—साहब ने पूछा ।

"दरियागंज ।"—मैंने कहा ।

"और आप ?"

"रामनगर ।"

"क्या करते हैं ?'

मैंने कहा, "यही लिखा-पढ़ी ।"

"लिखा-पढ़ी ! यानी किसी दफ्तर में क्लर्क हैं ?"

"जी नहीं ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"तब फिर ?"

"यही किताबों का तर्जुमा किया करता हूं।"

(सुधीन्द्र से)—"और आप क्या करते हैं ?"

"वही, जो यह करते हैं। हम लोग एक ही दफ्तर में हैं।"

"खैर, साहब, किया क्या जाय ? आपने बड़े खतरे का काम किया है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूं कि पढ़े-लिखे होने पर भी आपने यह न सोचा कि आप लोग कितना नासमझी का काम कर रहे हैं ?"

मैंने कहा, "वहां बैठना हमारे लिए आज कोई नई बात तो थी नहीं। जाने कितनी मर्तबा वहां जाकर बैठे हैं।"

"ओ, तब आप पक्के गुनहगार हैं। अच्छा कालेखां, इन्हें ले जाओ।"

हमारी बातचीत अधिकांश अंग्रेजी में हुई थी, जिसका एक शब्द भी बेचारा कालेखां न समझ पाया था। फिर भी हम लोगों को अपने साहब से यों बेधड़क बातें करते देख उसे विश्वास हो गया था कि हम लोग बेलाग छूट जायंगे। अचानक साहब का हुक्म पाकर वह चौंक-सा पड़ा। "जो हुक्म।" कहकर तुरन्त ही उसने सलाम बोला।

"चलिए, अब आप देर न कीजिए।"

"उसकी ओर ध्यान न देकर हमने कहा, "कम-से-कम इस सिपाही से यह तो पूछिए कि अगर इसकी ड्यूटी थी तो इसने नीचे उतरने से हमें रोका क्यों नहीं ?"

"आप लोग जाइए। मुझे किसी से कुछ नहीं पूछना। आपको जो कुछ कहना हो, थाने में जाकर कह दीजिए।"

मैंने कहा, "थाने में भेजकर आप परेशान भले ही कर लें। होने-हुआने वाला तो कुछ है नहीं।"

साहब कुछ न बोला। किताब पढ़ने में लग गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कालेखां फिर चीखा, "चलिए ।" हम लोग उठकर खड़े हो गए ।

किताब की ओर देखते हुए ही साहब बड़बड़ाया, "पुल उखाड़ने की कोशिश करना जुर्म नहीं है तो आप लोग जरूर बच जायंगे ।"

(किताब हटाकर)—"हां देखो, कालेखां, थानेदार साहब से बोलना कि मैंने इन्हें बहुतेरा रोका, लेकिन ये नहीं माने। नीचे कूद गए । समझे ?"

"जो हुक्म ।"—अपने बचाव में अनायास ही अपने अफसर का बल पाकर कालेखां प्रसन्न हो उठा । अपने को गंभीर बनाये रखना एकबारगी उसके लिए मुश्किल हो गया। विजय के उल्लास से हमारी ओर देखते हुए बोला, "चलिए साहब, देर होती है। मुझे ड्यूटी पर जाना है ।"

मैंने सुधीन्द्र की ओर देखा । सुधीन्द्र ने मेरी ओर । दोनों मुस्करा उठे । सुधीन्द्र बोले, "आए थे घूमने । अच्छी बला सिर लगी ।"

मैंने कहा, "किया क्या जाय । घर पर मामाजी राह देखेंगे; लेकिन लाचारी है ।"

इतना कहकर हम लोग आगे बढ़ चले । कोई चार कदम निकले होंगे कि साहब ने पुकारा, "सुनिए, आप लोग कहां के रहने वाले हैं ?"

मन-ही-मन मैंने सोचा कि हो-न-हो, अब यह घर का पता पूछकर कालेखां से कहेगा कि तलाशी का वारण्ट वहां भी भिजवा देना; लेकिन सिर जब ओखली में पहुंच ही गया तो फिर मूसलों का क्या डर ! मैंने कहा, "मैं तो अलीगढ़ का रहने वाला हूं ।"

मेरा इतना कहना था कि मानों साहब को बिजली का करण्ट लगा। एक साथ उठ कर बैठ गया । "अरे साहब, आइए, अन्दर तशरीफ लाइए । कालेखां, उस पलंग को यहां ले आओ ।"

हम दोनों चकित हो जहां-के-तहां खड़े रहे । घड़ी भर पूर्व का पत्थर का साहब मोम कैसे हो गया, हम लोग न समझ पाए । इसमें भी जरूर कोई-न-कोई चाल है—भीतर से कुछ ऐसी ही ध्वनि उठी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कालेखां ने पलंग अन्दर ले जाकर डाल दिया ।

"बाहर क्यों खड़े हैं साहब ? अन्दर आइए । मुझे निहायत अफसोस है कि मैंने आपके साथ ऐसा सलूक किया ।"

हम लोग अन्दर चले गए । बड़े तपाक से खड़े हो कर उसने पहले मुझसे फिर सुधीन्द्र से हाथ मिलाया । बोला, "माफ कीजिए । मुझे निहायत अफसोस है ।"

मन में आया कि कह दूँ कि तुम अपनी लाटसाहबी दिखा लो; पर बात कण्ठ के बाहर होते-होते रुक गई । शिष्टाचार के मारे कहने का कह तो दिया कि कोई बात नहीं, पर मन की कठोरता ज्यों-की-त्यों बनी थी ।

"मेरा वतन भी अलीगढ़ ही है । ऊपरकोट पर मेरे वालिद रहते हैं । अपने वतन का तो परिन्दा भी प्यारा लगता है । कालेखां, तीन प्याला चाय लाओ । लीजिए, सिगरेट पीजिए ।"

मैंने कहा, "इस सब तकल्लुफ की जरूरत नहीं । हम लोग चाय नहीं पीते, न सिगरेट ।"

"अच्छा कालेखां, पान लाओ ।"

मैंने कहा, "हम लोग पान भी नहीं खाते ।"

"जी नहीं, यह नहीं होने का । चाय भी नहीं, सिगरेट भी नहीं और पान के लिए भी इन्कार करते हैं ! क्या मुझे माफ नहीं कर सकिएगा ?"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है ।"

"तब चलिए, पुल पर घुमा लाऊँ । कालेखां, वर्दी लाओ ।"

कहने की देर थी कि कालेखां वर्दी ले आया और साहब को पहनाने लगा । कमीज पहिनकर मोजे पहिने और जूते कसवाने के लिए जब साहब ने पलंग पर बैठकर कालेखां की ओर पैर बढ़ा दिए तो उस सिपाही ने अपना कार्य करते हुए एक निगाह चुराकर हमारी ओर देखा, मानों कहना चाहता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो कि जनाब, वतन की मुहब्बत ने बचा लिया, नहीं तो यही कालेखां आप लोगों को जेल की हवा खिलाए बिना न मानता। उसके भावों को समझ कर हम लोग मुस्करा उठे।

वर्दी पहिनकर साहब ने चमड़े का हाथ-भर का डण्डा उठाया और खेमे से बाहर होने लगा कि कालेखां ने फिर सलाम बोला।

"ड्यूटी पर जाओ"—कहकर साहब आगे बढ़ा। हम दोनों भी साथ-साथ चले। गारद के सामने पहुंचे तो उसने सलामी दी। साहब के साथ हम लोगों को भी अपने-अपने हाथ माथे तक ले जाने पड़े। वहां से दो मिनट में फारिग होकर आगे बढ़े। पुल पर जब पहुंचे तो साहब ने हंसकर कहा, "अब आप लोग जिस खंभे पर जाना चाहें चले जायं।"

मैंने कहा, "माफ कीजिए जनाब, एक मरतबा खंभे पर जाकर जेल के फाटक से ही लौट आए। अबकी गए तो बिना अन्दर जाए छुटकारा नहीं मिलेगा। क्यों सुधीन्द्र ?"

कहकहा लगाकर हम सब हंस पड़े।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ८ :

बिगड़ी आकृति

अमला जब ब्रह्मपुत्र की कलाशाला की ओर रवाना हुई तो उसका मन न जाने कैसा हो रहा था। जिस उमंग और उत्साह के साथ उसने कलाकार के निमन्त्रण को स्वीकार किया था, वह अब जरा भी शेष नहीं रह गया था। उसकी तबीयत में एक प्रकार-सी घबराहट-सी थी और वह सोचती थी कि अमला ने भूल की जो ब्रह्मपुत्र के एक बार कहने से ही राजी हो गई। इन्कार भी कैसे करती? उस कलाविद् की वाणी में कुछ ऐसा खिचाव था कि अमला तो क्या, कोई भी उससे बच नहीं सकता था। कलाशाला ज्यों-ज्यों निकट आती गई, अमला के हृदय का स्पन्दन तीव्र से तीव्रतर होता गया, यहां तक कि शाला के अहाते में घुसते समय वह अपने को कोस रही थी।

कार जब द्वार पर रुकी और वह उसमें से उतरी तो उसके चेहरे और चाल-ढाल से कोई भी साफ देख सकता था कि वह बेहद परेशान है और उसका बस चलता तो वह ड्राइवर से कह देती कि गाड़ी घर वापस ले चलो; लेकिन वह नहीं कह सकी, नहीं कह सकी।

ब्रह्मपुत्र पहले से ही दरवाजे पर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। कार के रुकते ही चार-पांच कदम आगे आकर उसने अमला का स्वागत किया और अभिवादन के पश्चात् उसे कलाशाला में ले गया। उसके चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही थी। कुर्सी की ओर संकेत करता हुआ बोला, "आप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहां बैठिए।" और फिर उसने स्टैण्ड को सरकाकर यथास्थान किया और भीगे कपड़े के नीचे से मिट्टी का एक लोंदा उठाकर स्टैण्ड के निकट तिपाई पर रखते हुए बोला, "देखिए, मेरा अनुमान है कि दो दिन में आपकी मूर्ति तैयार हो जायगी, बशर्ते कि आप भी सहयोग दें।"

अमला चुपचाप कुर्सी पर बैठ गई और कुछ बोलना चाहते हुए भी बोल नहीं पाई। उसका जी अब भी पूर्णतया शान्त नहीं था। ब्रह्मपुत्र ने कहा, "देखिए, देवीजी, आपको करना कुछ भी नहीं है। आप चुपचाप बैठी रहें और थोड़ा मुस्कराती रहें।"

अमला ने मुस्कराने की चेष्टा की ; लेकिन मुस्करा न सकी और एक के बाद एक अनेक असंबद्ध बातें सोचती रही।

कलाकार ने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया और देखते-देखते स्टैण्ड पर उसकी अस्पष्ट आकृति दीख पड़ने लगी। ब्रह्मपुत्र बार-बार उसकी ओर देखता था और मूर्ति को संवारता था। उसके हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे और वह बड़े मनोयोगपूर्वक प्रतिमा का निर्माण कर रहा था। अमला कुछ भी सोचती हो, कितनी भी परेशान हो, लेकिन कलाकार शान्त और गंभीर था। अमला को देखकर कभी-कभी उसके माथे पर एकाध सल-वट पड़ जाती थी।

अमला अब कुछ-कुछ सुस्थिर हो चली थी और उसका ध्यान कलाकार पर केन्द्रित हो गया था। ब्रह्मपुत्र जब उसकी ओर देखता तो वह उसकी आंखों को ऐसे देखती, मानों उनमें गहरी घुसकर वह उसके हृद-गत भावों को पढ़ लेना चाहती हो। उसे याद आया कि कलाकार अकेला है, एकदम अकेला। एक दिन अचानक उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी और फिर उसने शादी नहीं की। लोगों ने बहुतेरा जोर दिया, समझाया; लेकिन अपने निश्चय पर वह दृढ़ ही रहा। सो वह अकेला है और इस कलाशाला में अपने को भूले रहता है। देखो तो सही, उसकी कल्पना ने कैसी-कैसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कृतियों को जन्म दिया है : शिव, पार्वती, गांधी, बा.... वह कोने में उर्वशी.... अरे, सामने यह किसकी मूर्ति है ?...

कलाकार ने कहा, "देवीजी, अधिक सोचिए नहीं। आपकी आकृति गंभीर वैसे ही है, सोचने से और भी गंभीर हो जाती है।"

पर अमला क्या करे ! मन को क्या वह राजी से इतना डोलने दे रही है ? सच पूछो तो वह कितना ही चाहती है कि बिलकुल न सोचे; पर उसका मन काबू में आवे तब न !

उसका ध्यान फिर सामने की मूर्ति पर जा टिका। शायद वह कलाकार की पत्नी है। उसके साथ इसका जीवन कितना सुखी रहा होगा ! और अब ? हाय, अब वह कितना एकाकी है ! दुनिया में उसका कौन है ? मां हैं। वे अपने पूजा-ध्यान में लगी रहती हैं। हाय, विधना ने इस अभागे की हरी-भरी दुनिया क्यों उजाड़ दी ?

अमला दुखित हो उठी। उसकी विचारधारा रुकी नहीं। चलती ही रही। ब्रह्मपुत्र अपने काम में लगा था, मानों काम के अतिरिक्त और किसी से उसे कुछ सरोकार ही न हो !

इस तरह लगभग डेढ़ घंटा बीत गया। तब ब्रह्मपुत्र का हाथ धीरे-धीरे रुकने लगा। बोला, "क्षमा कीजिएगा, देवीजी ! आपको बड़ा कष्ट हुआ। कल मैं इसे जरूर पूरी कर दूंगा।"

अमला ने साहस बटोर कर कहा, "कष्ट मुझे क्या, आपको ही हुआ। आप मुझे क्षमा करें।"

अमला चली गई और ब्रह्मपुत्र दूसरी मूर्ति को ठीक करने में लग गया।

× × ×

अगले दिन जब अमला आई तो उसका मुँह कुछ उतरा हुआ-सा था। यहां से जाने के बाद एक क्षण को भी वह कलाकार का ध्यान अपने मन से दूर न कर सकी थी। रह-रह कर एक ही बात उसके जी में उठती थी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कलाकार अकेला है। कोई भी तो उसका नहीं है। यह सोच कर उसका हृदय करुणा से और पीड़ा से भर-भर आता था।

पहले दिन की भांति ब्रह्मपुत्र उसे द्वार पर ही खड़ा मिला और अभिवादन के उपरांत उसे भीतर ले गया। अमला मूर्तिवत् कुर्सी पर जा बैठी और कलाविद् फिर अपने काम में लग गया। थोड़ी देर में अमला को लगा कि ब्रह्मपुत्र की निगाह जैसे बदलती जा रही है। जब वह उसकी ओर देखता है तो जैसे कहता है कि लो जी, तुम तो अपने वैभव में डूबी हो। यहां से वहां तक तुम्हारी दुनिया फैली है.... पर इस व्यापक जग में मेरा कौन है ?...

और अमला के भीतर जैसे कोई अनायास ही बोल उठा—"नहीं, जी, तुम अकेले कैसे हो ? मैं जो हूं।"

अन्तर में इस विचार के उदय होते ही अमला कांप उठी और कुछ लजा भी गई।

उसकी निगाह फिर एक बार सामने की मूर्ति पर जा लगी। अमला को वह मूर्ति वहां अच्छी नहीं लगी। उसने निगाह वहां से हटा ली और पास की शिव और पार्वती की मूर्ति देखने लगी। पार्वती शिव के निकट कैसी भली लगती हैं और पार्वती के सान्निध्य से शिव का उल्लास कितना बढ़ गया है!... विचार-सागर में अमला अब इतनी डूबने और उतराने लगी कि वह अपने को बिलकुल भूल गई और उसे इसका आभास तक न रहा कि वह कलाशाला में बैठी है और उसकी मनोगत भावनाएं उसकी आंखों द्वारा व्यक्त हो रही हैं।

कलाकार जो निर्विकार भाव से अपने कार्य में संलग्न था, अब अचानक चौंक पड़ा। उसने अमला के जिस रूप को मूर्तिमान करना चाहा था,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अमला उससे दूर पड़ती जा रही थी। उसकी आंखों और कपोलों की हल्की-सी रेखाएं अलौकिक प्रेम को नहीं, नारी की दुर्बलता को व्यक्त कर रही थीं। ब्रह्मपुत्र के हाथ रुक गए। गम्भीर होकर उसने कहा, "देवीजी !"

अमला की विचारधारा टूटी। बोली, "मैं आपसे याचना करती हूँ कि आप मुझे 'देवीजी' न कहें। मैं अमला हूँ और अमला ही रहना चाहती हूँ।"

"आप यह क्या कहती हैं?"

"वही जो अमला को कहना चाहिए।"

कलाकार कुण्ठित हो उठा। बोला, "देवीजी, यह मेरा देव-मंदिर है, मेरी कला-साधना का पावन-गृह। आप ऐसी बातें न करें।"

अमला ब्रह्मपुत्र की बातों से पराजित नहीं हुई। बाढ़ से जैसे नदी का बाँध टूट गया हो, वह बोली, "यह आपका देव-मंदिर है तो मैं आपसे पूछती हूँ कि आपने शिव के पास पार्वती को क्यों बिठाया है, गाँधी के पास बा क्यों हैं? मैं कहती हूँ कि पुरुष की पूर्णता नारी से ही है और इस बात को आप भी अच्छी तरह से जानते हैं। क्या मैं झूठ कह रही हूँ?"

ब्रह्मपुत्र कुछ नहीं बोला। उसे लगा कि उसके देवालय को दूषित और उसकी कला को भ्रष्ट किया जा रहा है। नहीं-नहीं, वह ऐसा नहीं होने देगा। अपनी पत्नी के शव का स्पर्श कर के उसने शेष जीवन को कला की साधना में व्यतीत करने की जो पावन प्रतिज्ञा की थी, उससे वह डिगेगा नहीं। उसे बड़ा संताप हुआ। फिर उसने सोचा कि जीवन में आदमी की परीक्षा होती ही रहती है और सोना तप कर ही कंचन बनता है। ऐसा सोच कर ब्रह्मपुत्र कुछ स्वस्थ हुआ। सामने की ओर इंगित करके उसने कहा, "देवीजी, इस मूर्ति को देखिए। नारी का यही रूप मेरे इस आराधना-गृह में स्थान पा सकता है। आपने पार्वती की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बात कही, सो क्या आप नहीं जानतीं कि पार्वती शिव की साधना में योग देकर उन्हें ऊँचा उठाने के लिए वहाँ बैठी हैं। देखतीं नहीं कि दोनों के मुखमण्डल पर कितना निस्पृह प्रेम और कितनी अलौकिकता है !"

और ब्रह्मपुत्र ने भक्ति-विह्वल होकर शिव और पार्वती की मूर्ति के सामने सिर झुका दिया। फिर बोला, "देवीजी, आप जाइए। अमला की मूर्ति बनाना मेरे लिए संभव नहीं है। उसके जिस रूप की झाँकी मुझे पानी थी, मैं पा चुका । अब आप जाना चाहें तो जा सकती हैं।"

"ब्रह्मपुत्र, तुम यह क्या कहते हो ? नारी का अपमान करने का किसी को भी अधिकार नहीं है।"

"दुर्बल नारी कहीं भी मान की अधिकारिणी बनी है, जो यहाँ बनेगी ! नारी की महिमा त्याग में है। देवीजी, आप जाइए। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।" अमला तब वहाँ बैठी रहने का साहस न कर सकी। उठी और स्टैण्ड पर रखी नवनिर्मित मूर्ति को एक सपाटे में नीचे गिरा कर कलाशाला से बाहर चली गई।

ब्रह्मपुत्र थोड़ी देर तक किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रह गया। यह ऐसी ही अप्रत्याशित घटना थी; पर उसे दुख तनिक भी नहीं हुआ, उल्टा हर्ष ही हुआ। परीक्षा-काल में उसके पैर नहीं डगमगाए ।

फिर धीरे से उसने उस बिगड़ी आकृति को उठाया और उसे देखकर हंस पड़ा । अनंतर उसे उठाकर कलाशाला के बाहर थोड़ी दूर पर एक निर्जन स्थान में रख दिया।

× × ×

ब्रह्मपुत्र की उस सुविख्यात कलाशाला को देखकर जब दर्शक निर्जन में अवस्थित उस मूर्ति को देखते हैं तो हँसने लगते हैं। उनकी समझ में नहीं आता कि आखिर ऐसी भोंड़ी सूरत बनाने की कलाकार को क्या पड़ी थी !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ९ :

करीम

आज से बीस वर्ष पूर्व हमारे निष्ठावान और धर्मपरायण घर में करीम का समावेश किस प्रकार हुआ होगा, यह आज भी एक आश्चर्य-जनक चीज दिखाई देती है। पश्चिमी हवा ने आज तो जमाने को बहुत-कुछ बदल दिया है और प्राचीन रूढ़ियों और पुरातन प्रथाओं का महत्व बहुत कम हो गया है; पर जरा उस युग की कल्पना कीजिए, जब कि धार्मिक कृत्यों में तनिक भी स्वतन्त्रता बरत लेना घोर और अक्षम्य पाप माना जाता था और कठोरतम प्रायश्चित्त द्वारा भी उस पाप से मुक्ति नहीं पाई जा सकती थी। मैं तब कोई आठ बरस का था। पास के गाँव की पाठशाला में पहली या दूसरी जमात में पढ़ता था। एक दिन शाम को जब पट्टी-बस्ता बगल में दबाये घर लौटा तो चबूतरे पर नीम का सहारा लिए एक अपरिचित व्यक्ति को बैठे देखा। पट्टी को टाँग के सहारे टेक उसके सामने खड़े होकर मैंने पूछा, "कहाँ से आए हो?"

अपनी छोटी-छोटी काली आँखों से वृद्ध ने मेरी ओर देखा और एक गहरी निःश्वास छोड़ थोड़ा आगे को सरक आया। बोला कुछ नहीं।

"कहाँ से आए हो?" मैंने फिर दोहराया।

उसकी दाढ़ी और मूंछें सन की तरह सफेद थीं। बोला, "कहाँ से आया हूँ? मैं खुद नहीं जानता। अल्ला ने मुझे भेजा है।"

उसकी बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं उससे कहना चाहता था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि अल्ला को मैं नहीं जानता, मुझे तुम साफ-साफ कहो कि कहाँ से आए हो और क्यों आए हो ? पर उसी समय पिताजी भीतर से निकल कर आए और मुझे वहाँ खड़ा देखकर बोले, "बिन्नी, देखो, यह करीम हैं। आज से हमारे घर ही रहेंगे। तुम इनसे लड़ोगे तो नहीं।"

मैं कुछ कहूँ कि उससे पहले पिताजी ने करीम की ओर देखकर कहा, "इस बिन्नी की आदत कुछ ऐसी ही है। बेबात लड़ाई कर बैठता है और दूसरों को परेशान कर डालता है। करीम, इसकी बात का तुम कभी बुरा मत मानना।"

करीम के चेहरे पर हलकी मुस्कराहट झलक आई। अपनी पतली बाँहें मेरी ओर फैलाकर बोला, "मेरे पास आओ कुँवर सा'ब !"

मैंने पट्टी उठाई और भीतर चला गया। अन्दर जाकर माँ का जो रूप देखा, उससे दंग रह गया। खटोले के पाँयत बैठी बहुत ही नाराज हो रही थीं। पास जाकर मैंने कहा, "क्या है अम्मा ?"

गुस्से से वह बोलीं, "है क्या मेरा सिर ? अब तो आसमान फटने वाला है। मैं न जानती थी कि एक दिन वह भी इन आँखों से देखना पड़ेगा, जब धरम-करम और ईमान सब मिट्टी में मिल जायगा। अपने बाप की करतूत देख। रख लिया है घर में मुसलमान। इन लोगों का कुछ भी तो ठिकाना नहीं। खानी-अनखानी चीजें सब खा जाते हैं।"

अब मेरी समझ में आया कि यह सारा बखेड़ा करीम को लेकर खड़ा हुआ है। लेकिन मैंने देखा कि मुश्किल से एक सप्ताह बीता होगा कि माँ का गुस्सा शान्त हो गया और उनके मन में करीम के प्रति सहानुभूति के भाव भर आए। करीम का खान-पान, रहन-सहन, सब-कुछ हमारे जैसा ही था। हमें यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि करीम ने अपने जीवन में माँस खाना तो दूर, कभी उसका स्पर्श तक नहीं किया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करीम के लिए अलग मिट्टी के बर्तन थे, जिनमें हम लोग खाना दे देते थे और वह कमरे के एक कोने में बैठ कर चुपचाप खा लेता था।

करीम को बुढ़ापे ने पूर्ण रूप से घेर लिया था। शरीर उसका इतना जर्जर हो गया था कि कोई भी भारी काम वह नहीं कर सकता था। माँस सूख गया था और खाल लटक आई थी। एक-एक हड्डी उसकी गिनी जा सकती थी। अपना छोटा-सा काठ का हुक्का लिए वह बैठा रहता था। बहुत जी में आता या हम लोग परेशान करते तो कभी-कभी रात को एकाध कहानी सुना देता था। कहानियों का उसके पास अटूट भण्डार था, पर लम्बी कहानी सुनाने में उसे कष्ट होता था। कभी-कभी खाँसी बुरी तरह से आ दबाती थी। कभी छोटी मुनिया आकर करीम की दाढ़ी पकड़ लेती। लाड़ के मारे तुतला कर कहती, कलीम, एक भजन सुना दो।" करीम कहता, "बिटिया, भजन-वजन मैं क्या जानूँ?" तब हम सब उसके पीछे पड़ जाते और करीम माथे पर हाथ रखकर किसी भूले भजन को याद करता और उसकी एकाध कड़ी सुना देता। हमारे मनोरंजन का वह एक साधन बन गया था।

धीरे-धीरे कई महीने बीत गए और करीम अब हमारे घर का एक सदस्य ही बन गया। हमें उससे बहुत सहारा मिलता था। पिताजी कहीं बाहर चले जाते और घर पर माँ और हम बालक रह जाते तो वह रात-रातभर जागकर घर की रखवाली करता। क्या मजाल कि कोई परिन्दा भी पैर मार जाय। लाठी लिए चबूतरे पर चक्कर लगाता रहता और जब थक जाता तो दरवाजे के सहारे अपने बिस्तर पर जा बैठता और हुक्का गुड़गुड़ाने लगता।

एक दिन बात-बात में मैंने पूछा, "करीमबाबा, तुम्हारे घर से कभी कोई यहाँ नहीं आया। कहो तो चिट्ठी लिख दूँ? कोई आ जायगा। तुम्हें घर की याद नहीं आती?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इतना कहते-कहते मैंने देखा, करीम खो-सा गया, जैसे उसे वे बातें याद हो आईं, जिन्हें वह भूल जाना चाहता था । उसके हाथ काँपने लगे।

"अपने घर में क्या तुम अकेले ही थे करीम ?"—मैंने उत्सुकता से पूछा।

"इन सब बातों को छोड़ो, बिन्नी ! उस सब के पूछने से फायदा क्या ?" करीम ने क्षीण स्वर में कहा।

पर बिन्नी तो अपनी अड़ के हैं। जिस बात पर डट जाते हैं उससे पीछे नहीं हटते। तब करीम ने कहा, "बिन्नी, अल्ला चाहता था कि मैं अकेला रहूँ। सो मैं अकेला हूँ। हाँ, अल्ला ही ने तो चाहा था, नहीं तो क्या मेरा भरा-पूरा घर मेरी इन आँखों के सामने एक दिन के भीतर ही स्वाहा हो जाता ? प्लेग आई और कुछ घंटों के भीतर ही चार जवान बेटों और घरवाली को लील गई। उन्हें जाते देखा तो मैंने कहा कि मुझे भी ले चलो। तुम नहीं तो मेरी जिन्दगी कैसे चलेगी ? लेकिन वे न रुके। मौत के पंजे ने उन्हें दबोचा और मैं 'हाय-हाय' कर के रह गया। तब से एक बात मेरे दिमाग में आई है। इस जिन्दगी का, जिस पर हम इतना गुमान करते हैं, कुछ भी भरोसा नहीं है। किसी से मोह न करो। मोह दुख देता है। धन-दौलत में या बेटी-बेटों में जान फँस गई कि फिर छूटने में तकलीफ होती है। लेकिन बिन्नी, अभी तुम तो बालक हो। इस बात को क्या समझोगे?"—कहते-कहते करीम ने एक लम्बी साँस ली।

उस दिन से करीम के प्रति मेरे दिल में एक ऐसी कोमल भावना उत्पन्न हो गई कि उसे फिर मैंने कभी भी नहीं छेड़ा। जहाँ तक मुझसे बनता, उसके आराम का खयाल रखता। शाम को प्रायः मैं ही उसे खाना ला कर देता। अब मैं जोर देकर एकाध रोटी उसे और अधिक खिला देता। पाठशाला से लौट कर आते ही पट्टी-बस्ता घर में रख कर करीम के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पास आ बैठता और करीम को भी कुछ ऐसा हो गया था कि मेरे आकर बैठते ही वह अपने घर की कोई-न-कोई बात सुनाने लगता। कभी घरवाली की, कभी बेटों की। उसके हृदय का बोझ इससे कुछ हलका हो जाता था। कभी-कभी तो उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते थे। तब मेरा जी करता कि उसके गले में अपनी दोनों बाँहें डाल कर कहूँ, "ओ करीम, तुम दुःख क्यों पाते हो ? मैं तुम्हारा ही बेटा हूँ ? मुझे तुम प्यार करो। मैं तुम्हारी सेवा करूँगा, उतनी ही जितनी कि तुम्हारा हबीब करता था—उससे भी ज्यादा।" लेकिन मेरा मुँह न खुलता।

और करीम कहता, "बिन्नी बेटा, मैं उन सब बातों को भूल जाना चाहता हूँ। पर मुझे उनकी याद आती है और दुःख होता है। अल्ला अब तो मुझे उठा ले।"

और तब बात बदलने के लिए मैं कहता, "अच्छा बाबा, आज सिंगलदीप की पद्मिनी की कहानी सुना दो। हाँ तो, सौदाग रका बेटा जहाज पर सामान लाद सिंगलदीप पहुँचा। फिर क्या हुआ ?"

इस तरह दो वर्ष बीत गए। हम लोगों के बीच करीम अपने दुख को बहुत-कुछ भूल गया।

बाहर के कमरे में करीम अकेला ही सोता था; लेकिन उसका नियम था कि बड़े तड़के उठकर शौचादि से निवृत्त होने गाँव-बाहर चला जाता और फिर लौटकर दरवाजे के सहारे बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता रहता था। हुक्का पीते-पीते उसे जोर की खाँसी आती थी, जिसे सुनकर कभी-कभी माँ कहतीं, "करीम को कैसी खाँसी उठ रही है, जैसे खाँसते-खाँसते बेचारे का दम ही निकल जायगा। उसके लिए कुछ करो न ? हमें छोड़ कर उस बिचारे का और कौन है।"

माँ की इस सहानुभूति से मुझे बड़ी खुशी होती। मैं कहता, "अम्मा, तुम जानतीं नहीं, करीमबाबा बड़े अच्छे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस तरह दिन-पर-दिन निकलते गए। एक दिन रात को मैं करीम की चारपाई पर जा बैठा और उसकी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। "जमाल कितना बड़ा था बाबा ? . . . और मुश्ताक ? . . . . और नसरत और हबीब ?"

मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए करीम ने कहा, "जमाल तो कोई बीस का था, बाकी दो-दो बरस छोटे। . . . .लेकिन हबीब. . . .मुझे कितना प्यार करता था ! उसकी जिन्दगी में मैंने कभी भी अपने हाथ से चिलम भर कर नहीं पी। चिलम की तो बात ही क्या, पानी भी अपने हाथ से लेकर उसने नहीं पीने दिया। तुम तो छोटे हो बिन्नी, लेकिन सूरत में बिलकुल तुम-जैसा था । तुम्हारे जैसे ही बाल, तुम्हारी जैसी ही गोल-गोल आँखें। ठीक तुम्हारी ही तरह वह हँसता था।"

उस रात को बहुत देर तक मैं करीम के पास बैठा रहा। करीम बात-पर-बात सुनाता रहा। रात जब बहुत बीतने लगी तो भीतर से पिताजी ने आवाज दी और मैं उठ कर चला गया। जाते-जाते करीम ने मेरा हाथ पकड़ा और उसे होठों से लगाकर प्यार किया।

सबेरे उठकर पिताजी ने माँ से कहा, "देखो जी, करीम से गाय-भैंसों का कुछ काम ले लिया करो। छोटे-मोटे काम तो वह आसानी से कर सकता है।"

कहकर पिताजी उठकर बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद लौटकर उन्होंने कहा, "दिन चढ़ आया है और करीम अभी तक नहीं उठा। ऐसा भी क्या सोना ?"

माँ ने कुछ उत्तर नहीं दिया और पिताजी भी अपने काम में लग गए। लेकिन सूरज ऊपर चढ़ आया और फिर भी करीम न उठा तो हम लोगों को चिन्ता हुई। मैंने कमरे की किवाड़ों पर जोर से हाथ मारते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हुए कहा, "बाबा, ओ करीमबाबा, कबतक सोओगे? उठो, कितनी देर हो गई है!"

कोई उत्तर न मिला। हम लोगों की चिन्ता बढ़ी। पिताजी ने और कोई उपाय न देख किवाड़ें उतरवाईं। भीतर जाकर देखा, करीम शान्त भाव से अपनी चारपाई पर लेटा है।

"करीम-करीम!" पिताजी की आवाज सारे कमरे में गूँज उठी। उनके स्वर-में-स्वर मिलाते हुए मैंने कहा, "करीमबाबा! ओ करीम-बाबा!"

लेकिन करीम...चुपचाप लेटा था। लेटा ही रहा। सूर्य की किरणें उसके चेहरे पर झलक रही थीं।

पिताजी का चेहरा गम्भीर हो उठा। भीतर आकर बोले, "करीम चला गया!" माँ को जैसे बिजली का झटका लगा और मुझे भी ऐसा मालूम हुआ, मानों बिच्छू ने एक साथ डंक मार दिया हो? अंतरिक्ष में पिताजी के शब्दों की प्रतिध्वनि हुई—"करीम चला गया!"

कई दिन तक घर में गहरा शोक छाया रहा। करीम के जाने से हमारे घर का एक सदस्य चला गया था। इतने वर्ष बाद आज भी जब-कभी उसकी स्मृति हमें विचलित कर देती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १० :

निर्मोही का मोह

पं० राजनारायण कालेपानी से लौटकर आए तो लोगों ने उन्हें अपनी धारणा के ठीक विपरीत पाया। वे सोचते थे कि उनकी देह सूख गई होगी और यातनाओं से उनकी उमंगें दब गई होंगी; लेकिन जब वे सामने आए तो लोग अपनी आँखों पर सहसा विश्वास न कर सके। साठ के ऊपर उम्र होने पर भी उनका शरीर कसा और दमदार था। छाती उभरी और फैली, आँखों में अद्भुत चमक। फुर्ती इतनी कि कोई जवान भी उनके सामने क्या ठहरता! कुल मिला कर उनके छब्बीस वर्ष जेल में और बाद में कालेपानी में बीते थे और सच यह कि उन दिनों जेल जाना टेढ़ी खीर था। जेल जाने का अर्थ होता था मृत्यु का आवाहन करना। देशभक्ति उन दिनों राजद्रोह मानी जाती थी और उसके लिए कठोरतम दण्ड और हृदय को हिला देने वाली यंत्रणाएँ दी जाती थीं। उनसे यदि कोई बच जाता तो उसे भगवान की कृपा ही मानना चाहिए। लेकिन राजनारायण तो कुछ ऐसी धातु के बने थे कि जिसे जितना तपाओ उतनी ही पक्की होती है और निखरती है। महीनों उन्हें खाने को नहीं मिला। कभी एक-दो मुट्ठी चने चबाने को मिल गए तो कभी वह भी नहीं। तनहाई में तो उन्हें बरसों रहना पड़ा, पर धन्य राजनारायण कि उनकी काया दिन-प्रतिदिन दृढ़ से दृढ़तर होती गई! बात वास्तव में यह थी कि देश-भक्ति की भावना से उनका हृदय इतना परिपूरित और माँ को बंधन-मुक्त करनेकी उनकी अभिलाषा इतनी उत्कट थी कि शरीरिक यातनाएं उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजनारायण को बचपन से ही घर-बार से कोई मोह-ममता न थी। शादी उन्होंने की नहीं। एक उच्च ध्येय की पूर्ति में लगाने के लिए शक्ति का कण-कण संचित किया। जेल में थे तब उनके पिता गुजर गए और कुछ ही दिन बाद जब उन्हें कालेपानी भेजा गया तो उसकी खबर पाकर दुख के मारे माँ भी चल बसीं। राजनारायण ने सुना, पर चेहरे पर एक शिकन भी नहीं आई। संगी-साथियों ने समवेदना प्रकट की तो उन्होंने कहा—"आप लोग भी तमाशा करते हैं! इस दुनिया में अमरौती खाकर कौन आया है? एक-न-एक दिन सबको जाना है।" लोग राजनारायण के निर्मोही स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। उनकी बात से उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

इसके बाद कई वर्ष कालेपानी में बीते और एक दिन खबर आई कि राजनारायण के छोटे भाई प्रेमनारायण ने विवाह कर लिया। राजनारायण हँस पड़े। मन-ही-मन बोले, "लक्ष्यहीन व्यक्ति भोग की ओर ही दौड़ता है।"

सारी दुनिया जानती थी कि राजनारायण जीवित घर नहीं लौटेंगे, लेकिन देश आजाद हुआ तो लोगों को आशा बँध गई कि अब उनका बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा। कुछ दिन में उनकी रिहाई हो गई। यों छूट कर कहने को वे सीधे अपने घर आए, लेकिन प्रेमनारायण और अनुज-वधू से ऐसे मिले, जैसे दूसरे लोगों से मिले थे और जब प्रेमबाबू के दोनों बच्चों ने असीम प्यार और श्रद्धा से अपने महान दादा के चरणों पर सिर टेक दिया तो वे उतने से अधिक आशीर्वाद नहीं पा सके, जितना कि अन्य बच्चों को उनसे प्राप्त हुआ था।

धीरे-धीरे एक-एक कर के बहुत दिन निकल गए। हम लोग काम से निपट कर शाम को प्रायः रोज ही राजनारायण के पास पहुँच जाते थे और उनके विगत जीवन के रोमांचकारी किस्से सुना करते थे। किस प्रकार पहले-पहल उन्होंने पिस्तौल से निशाना साधना सीखा, फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गोला-बारूद का कारखानां खोला, किस तरह हजार सिर मारने पर भी पुलिस उस कारखाने का पता न पा सकी और अन्त में कैसे उनके ही एक साथी ने पैसे के लालच में अंधे होकर उन सब को पकड़वा दिया। इस सब का वृत्तांत सुनकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते थे। जेल से भागने की कहानी तो इतनी भयोत्पादक थी कि उससे हमारे कलेजे मुँह को आ गए और जब उन्होंने बताया कि भगुवा वस्त्र पहने, गले में रुद्राक्ष की माला डाले महीनों वे पुलिस को चकमा देते रहे तो हम लोगों को बड़ी खुशी हुई। तब उन्होंने चुपके-चुपके बहुत-सा रुपया इकट्ठा किया और एक दिन सरकार की आँखों में धूल झोंक कर अमरीका को खिसक गए। वहाँ से हजारों बंदूकें लेकर लौटे और भारतीय सेना में विद्रोह की आग भड़का दी।

सुनाते-सुनाते राजनारायण एक लम्बी साँस लेते। कहते, "वह जमाना भी क्या था!"

× × ×

राजनारायण सदा प्रसन्न रहते थे, पर एक दिन मैं उनके पास गया तो वे अकेले बैठे जैसे शून्य में कुछ देख रहे थे। मुझे देखते ही उनकी विचारधारा टूटी। बोले, "आओ, हेमेन्द्र।"

मैं बैठ गया और क्षण भर के लिए वे मानों फिर खो-से गए। मैंने कहा, "क्या सोच रहे हैं, पंडितजी ?"

लगा, वे सोते से उठे हों। बोले, "कुछ नहीं।"

"नहीं, कोई बात जरूर है।"

बोले, "बात क्या होगी, बेटे!"

"पंडितजी, मैं मान नहीं सकता। बता दीजिए।"

वे मुस्कराये, "तू बड़ा हठी है रे!" फिर थोड़ी देर ठहर कर बोले, "बिना सुने नहीं मानेगा?"

"नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उन्होंने कहा, "तो ले सुन। एक भूली घटना आज याद आ गई है। बहुत दिनों की बात है। तू तो पैदा भी नहीं हुआ होगा! एक बार जेल हो आया था और गाँव-गाँव घूमकर लोगों को उकसा रहा था, विदेशी सरकार से मोरचा लेने के लिए तैयार कर रहा था। एक दिन घूमते-घूमते शाम को एक गाँव में पहुँचा। छोटा-सा गाँव था। बस्ती कम थी। देर हो जाने के कारण सोचा कि यहीं किसी के घर ठहर जाऊँ। तड़के उठकर आगे बढ़ जाऊँगा। यही सोचता एक घर में पहुँचा। भीतर जैसे ही पैर रक्खा कि सामने एक बुढ़िया दिखाई दी। मैंने कहा, "माँ, क्या रात को मैं यहाँ ठहर सकता हूँ?"

उसने मुझे घूर कर देखा और एक साथ 'बेटा, ओ मेरे लाल'—चिल्लाती हुई मुझसे आकर लिपट गई। वह फूट-फूट कर रोती थी और कहती थी—"हाय, इतने दिन तू कहाँ रहा? मैं तो अधमरी हो गई!"

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। फिर भी मैंने उसे शान्त होने को कहा। चुप हुई तो मैंने पूछा, "माँ, क्या बात है?"

वह बोली, "हाय, मेरे बेटा, तू मुझसे पूछता है!"

वह आगे और कुछ कहती कि इतने में बाहर से एक युवक आया। क्षण भर उसने मुझे देखा और फिर 'भैया-भैया' कह कर मुझसे बुढ़िया की तरह आ लिपटा। उसकी भी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और उसकी ऐसी हिलकी बंधी थी कि चाह कर भी वह कुछ कह नहीं पा रहा था।

मैं बड़ी परेशानी में पड़ा। वे दोनों मुझे इस तरह पकड़े थे, मानों मैं कोई कैदी हूँ। छोड़ा कि गया। मैंने उन्हें समझाया। कहा कि आप लोग भूल में हैं। मैं वह नहीं हूँ जो आप समझ रहे हैं। मेरे इतना कहते ही बुढ़िया की फिर हिलकी बंध गई। टूटे-फूटे शब्दों में बोली, "मैं अंधी नहीं हूँ। हाय, मेरे लाल, तू ऐसी बात मत कह!"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

युवक ने कहा, "हम लोगों को तुमने बहुत रुलाया है भैया। अब हम तुम्हें कहीं नहीं जाने देंगे।"

"अरे, मैं तो इस गाँव का रहने वाला नहीं हूँ।" मैंने कहा।

"नहीं भैया, तुम हजार कहो, हम अब धोखे में नहीं आवेंगे।"

हार कर मैं चुप हो गया। थोड़ी देर में वे दोनों वहाँ से हट गए तो किवाड़ की आड़ में से निकल कर एक स्त्री आगे आई और उसने मेरे पैर पकड़ लिए। सिसिकियाँ भरती हुई बोली, "स्वामी, मुझ अभागिन को आपने इतनी सजा क्यों दी!"

मैंने कहा, "बहन, मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हारा स्वामी नहीं हूँ। ऐसा कहकर मुझे पाप न लगाओ।"

मेरा इतना कहना था कि वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। बोली, "स्वामी, आप ऐसा कहोगे तो मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।"

उसकी वेदना देखी नहीं जाती थी। उसने कसकर मेरे पैरों को पकड़ रक्खा था और बार-बार अपना सिर उन पर टिका देती थी। मैंने समझ लिया कि मैं अपने बचाव की जितनी कोशिश करूँगा, परिस्थिति उतनी ही उलझेगी। यह सोचकर मैं चुप हो गया और इससे उन लोगों को बड़ी सांत्वना मिली। तत्पश्चात् उन्होंनें मुझे बड़े स्नेह से भोजन कराया और रात होने पर इस आशंका से कि मैं कहीं उठकर चला न जाऊँ, मुझे घेर कर सोए। मैं तो दिन भर का थका-मांदा था। पड़ते ही नींद आ गई। वे लोग पता नहीं कब सोए और सोए भी या नहीं!

अगले दिन फिर उन्होंने मुझे नहीं छोड़ा। थोड़ा एकान्त मिला तो वह स्त्री आ गई। आज उसके मुँह पर पर्दा नहीं था और वह मुझे ऐसी बेबसी से देखती थी, मानों दुनिया में उसके लिए कहीं कोई सहारा ही न हो। देखते-देखते बोली, "स्वामी, मैं सच कहती हूँ। इस बार आपने मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छोड़ा तो मेरे प्राण ही निकल जायंगे। एक बार कह दो कि अब नहीं जाओगे ! कह दो, मेरे स्वामी !"

मैं क्या कहता !

चार दिन इसी तरह बीते और जब मैंने छुटकारे का कोई उपाय नहीं देखा तो पिता को बुला भेजा। वे आए। उन्होंने उन लोगों को समझाया, "तुम लोग भ्रम में हो। यह तो मेरा बेटा है। इसका नाम राजनारायण है। इसका एक भाई घर पर है और माँ है। इसकी शादी नहीं हुई।...."

बात काटती हुई बुढ़िया बोली, "बड़े आए हो मेरे लाल को अपना कहने वाले ! भगवान ने जाने कैसे मेरा खोया बेटा मिलाया है ! उसे छीनते तुम्हें लाज नहीं आती ?"

पिताजी क्रोध से लाल हो गए। बोले, "तुम लोग नाहक झगड़ा खड़ा करती हो ! इससे कोई अच्छा नतीजा निकलने वाला नहीं है।"

मैंने पिताजी को समझा-बुझा कर शान्त किया और घर लौटा दिया। फिर एक सप्ताह मैं वहाँ और रहा। अनन्तर एक दिन मौका पाकर चुपचाप वहाँ से खिसक आया।

इतना कहकर पंडितजी चुप हो गए। मैंने कहा, "वहाँ से छुटकारा पा कर आपने चैन की साँस ली होगी !"

"क्या कहूँ, बेटा !"

"उस घर की फिर कोई खबर मिली, पंडितजी ?"

पंडितजी मेरी बात का तत्काल उत्तर न दे सके। मेरी ओर ताकते रह गए।

मैंने अपना प्रश्न दोहराया। पंडितजी के होंठ काँपे और मैंने अनुभव किया, जैसे किसी ने उनकी जीभ पकड़ ली हो। वे संभले। बोले, "वहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से आने के आठ-दस दिन बाद पता चला कि उस स्त्री की बात सच निकली। मेरे आने के तीसरे ही दिन उसके प्राण निकल गए।"

कहते-कहते पंडितजी की आँखें भर आईं और दो बड़ी-बड़ी बूँदें नीचे धरती पर टपक पड़ीं।

मैं हतप्रभ-सा उनके द्रवित चेहरे को देखता रह गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: ११ :

कर्फ्यू पास

नितिन को आज भी लौटने में काफी देर हो गई। विलंब से घर लौटना उसे पसन्द हो, सो नहीं। पर वह आदत से लाचार है। काम सामने होता है तो समय और दुनिया सब को भूल जाता है।

घर लौटा तो इंदु काफी तनी थी। देखते ही बोली, "इतनी जल्दी कैसे लौट आए?"

नितिन समझ गया कि इंदु भरी बैठी है। व्यर्थ में बात बढ़े नहीं, इससे वह चुप रहा आया।

"मैं कहती हूं, किसी दिन कुछ हो जायगा तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। कैसे दिन हो रहे हैं और मेरे हजार कहने पर भी तुम्हारे कान पर जूँ नहीं रेंगती! जब से यह कम्बख्त कर्फ्यू पास आया है तब से तुम्हें और ढील मिल गई है। तुम्हारे इस पास को आज दियासलाई न दिखा दूँ तो मेरा नाम इंदु नहीं।"

नितिन बड़ा धैर्यवान है। कड़वी-से-कड़वी बात के लिए भी मीठा जवाब उसके मुँह से निकलता है। इंदु की बात सुनकर वह केवल इतना ही बोला—"इंदु, आजकल काम अधिक है, इससे देर हो जाती है। तुम समझती हो कि मैं जानबूझ कर लौटने में देर कर देता हूँ?"

"मैं कब कहती हूँ कि तुम जानबूझकर देर कर देते हो? पर तुम्हें इतना ख्याल तो रखना ही चाहिए कि छः बजे से कर्फ्यू लग जाता है और उससे पहले ही तुम्हें घर वापस आ जाना चाहिए। लेकिन जनाब की जेब में पास सलामत है तो फिर कर्फ्यू की क्या चिंता!"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नितिन ने बात आगे नहीं बढ़ाई। मुँह से सीटी बजाता मौन भाव से वह कमरे में चला गया और दफ्तर के कपड़े उतारने लगा।

पति-पत्नी में उस दिन बराबर तनातनी-सी रही। नितिन को भोजन कराते समय इंदु की आकृति गंभीर थी और चेहरे पर हर दिन का-सा उल्लास नहीं था। उधर नितिन भी जैसे किसी भारी समस्या के सुलझाने में व्यस्त हो।

× × ×

अगले दिन दफ्तर जाते समय नितिन का हाथ अनायास कमीज की जेब पर गया तो देखा कि कर्फ्यू पास उसमें नहीं है। समझ गया कि हो-न-हो यह इन्दू की ही करतूत है। उसने चुपचाप साइकिल उठाई और आफिस चल दिया।

नितिन के चले जाने के वाद इंदु ने खाना खाया। फिर चारपाई पर लेट कर पिछले दिन का उपन्यास पढ़ने लगी। कुशल उपन्यासकार की कल्पना और भावों के उतार-चढ़ाव में वह ऐसी डूबी कि पुस्तक बीच में नहीं छोड़ सकी और समाप्त करके कमरे के बाहर आई तो शाम हो चुकी थी। बरामदे में खड़े होकर उसने एक अंगड़ाई ली और चौके की तरफ चली गई। भीतर बैठा रामू साग काट रहा था और आग सुलगाने के लिए बाहर रक्खी अंगीठी तेजी से जल रही थी। झल्लाकर इंदु ने कहा, "झींकते-झींकते मैं तो हैरान हो गई। कोयला किस मुसीबत से मिलता है और इस दुष्ट को देखो कि फूँकने में जरा दर्द नहीं। राम-राम, अंगीठी ऊपर तक कैसी भर रक्खी है और आग योंही जा रही है।"

रामू ने कहा, "बहूजी..."

"चुप रह। मैं बहूजी-बहूजी कुछ नहीं सुनना चाहती। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुझे ऐसा बिगाड़ा है कि किसी काम का नहीं छोड़ा। दूसरी जगह जायगा तो सिर पकड़ कर रोयगा और दो दिन भी नहीं टिक सकेगा।"

रामू ने बहुतेरा कहना चाहा कि उसे मालूम है कि कोयला सुलग गया है और वह चाय का पानी रखने जा रहा था; लेकिन मालकिन के स्वभाव से वह भलीभांति परिचित था और जानता था कि कुछ भी कहने का मतलब होता है घंटे दो घंटे की मुसीबत। अतः वह खामोश रहा और इंदु बड़बड़ाती कमरे में चली गई।

थोड़ी देर में रामू चाय लेकर गया तो इंदु आरामकुर्सी पर अध-लेटी विचारमग्न थी। डरते-डरते रामू ने मेज पर ट्रे रख दी और एक प्याला चाय बनाकर उसकी ओर बढ़ा दी। इंदु ने उसी अवस्था में पड़े-पड़े हाथ बढ़ाकर प्याला ले लिया और चम्मच से चीनी घोलने लगी। चीनी घोलती जाती थी और सोचती जाती थी कि कैसे वह पहले-पहल इस घर में आई थी। सारा घर तब मानों उल्लास और उत्साह से भरा था और अब उन्हीं नितिन को देखो, जैसे विरक्ति की ओर बढ़े चले जा रहे हों। कोई आकांक्षा मानों शेष नहीं रही है और घर और उसमें जो कुछ है, उस सब से उन्हें अनासक्ति होती जा रही है। इंदु का जी भर आया और वह चाहने लगी कि क्षण भर को उसका मन शून्य हो जाय और वह कुछ सोचना चाहे तो भी सोच न सके।

इसी उलझन के बीच हठात् उसे सूझा कि कर्फ्यू पास तो उसने रख लिया है। कहीं नितिन को लौटने में देर हो गई और बिना पास के मुसीबत में पड़ गए तो ?

इस विचार के उदय होते ही वह कांप उठी। अपनी करनी पर अब उसे पछतावा होने लगा। भीतर से जैसे किसी ने कहा कि अगर नितिन को कुछ भी हो गया तो इसके लिए इंदु ही जिम्मेदार होगी। पांचेक मिनट इसी प्रकार परेशानी में निकल गए। फिर उसने रामू को आवाज दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बोली, "देख रे, वह अलमारी में ऊपर पास रक्खा है। दफ्तर जाकर उसे अपने बाबूजी को दे आ। जा, जल्दी जा। और देख, उनसे कहना कि हो सके तो जल्दी ही लौट आवें। तू वहां मत रुकना। पास देकर फौरन लौट आना। समझा। चौका तबतक मैं देखती हूँ।"

पास लेकर रामू चला गया। इंदु चाय पीकर खाना बनाने में लग गई।

× × ×

काफी देर हो गई और नितिन और रामू में से कोई न आया तो इंदु की चिंता बढ़ने लगी और उसे घबराहट होने लगी। आखिर ऐसी क्या बात हुई जो दोनों में से एक भी नहीं लौटा ? वे तो खैर, ऐसे हैं ही; लेकिन इस रामू के बच्चे को तो आ ही जाना चाहिए था। दुष्ट कहीं का ! आए तो सही। ऐसी खबर लूँ कि वह भी याद करे। उनसे कह दूँगी कि देखो जी, दूसरा नौकर नहीं मिलता तो न सही, मैं सब काम अपने आप कर लूँगी; लेकिन इस रामू को मैं एक मिनट भी इस घर में नहीं देखना चाहती। मुझपर थोड़ा भी दया-रहम हो तो इसे तुम निकाल बाहर करो।

धीरे-धीरे अंधेरा फैलने लगा। साथ ही इंदु का कलेजा धक्-धक् करने लगा। दरवाजे पर जरा आहट होती कि उसे लगता—जरूर दोनों में से कोई आ रहा है। हो सकता है कि रामू को उन्होंने यह सोच कर रोक लिया हो कि वह रहेगा तो दफ्तर से उन्हें जल्दी उठने की फ़िक्र रहेगी। आंखें गाड़-गाड़ कर द्वार की ओर देखती थी और उस समय तक देखती रहती थी जबतक कि पैरों की आहट द्वार से दूर नहीं हो जाती थी। एकाध बार तो वह दरवाजे पर से दूर-दूर तक झांककर भी देख आई थी। कर्फ्यू की वजह से चारों ओर सन्नाटा छाया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहीं एक परिन्दा भी नहीं दीख पड़ता था। इस निस्तब्धता और विजनता को देखकर इंदु का दिल और भी बैठा जा रहा था।

आठ बजे, नौ और फिर दस और ग्यारह। न नितिन साहब आए, न रामू। इंदु अब जी-भर कर अपने को कोसने लगी। यह सब उसी की वजह से हुआ है, भला उसे जेब से पास निकालने की क्या पड़ी थी! न पास निकाला होता, न यह सब बखेड़ा खड़ा होता। बेशक इसके लिए वही दोषी है। ...

उसे लगा, जैसे दरवाजे की किवाड़ों को किसी ने धीरे से थप-थपाया। इंदु ने दौड़कर किवाड़ें खोलीं, पर वहां कोई भी न था।

इसके बाद उसकी रात कैसे बीती, इंदु ही जानती है। निरन्तर छट-पटाती रही। मन को ढांढस बंधाती थी कि इतना घबराने से लाभ क्या! वह पढ़े-लिखे हैं और सहज मुसीबत के चक्कर में आने वाले नहीं हैं। पर तभी अन्दर से कोई बोल उठता कि पास तो तूने ले लिया। पुलिस पकड़ लेगी तो वह कर ही क्या सकते हैं!

नहीं जी, पास उनको जरूर मिल गया होगा! ...फिर आए क्यों नहीं?

× × ×

सारी रात इंदु की पलकों पर बीती। सवेरे उठते ही उसने सबसे पहले पड़ौस से थाने को फोन किया। उसे आशंका थी कि कहीं रामू दफ्तर पहुँचा ही न हो और नितिन को बिना पास के पुलिस ने पकड़ लिया हो।

थाने से जो उत्तर मिला, उसे सुनकर इंदु के पैरों के नीचे की धरती खिसक गई।

थाने से किसी ने कहा—"नितिन यहां है और जुए में पकड़ कर लाया गया है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इंदु को कानों पर विश्वास न हुआ। बोली, "मैं नितिन चन्द्र शर्मा को पूछती हूँ।"

उत्तर मिला—जीहां, नितिन चन्द्र शर्मा।

इंदु ने दो-एक बातें और पूछनी चाहीं; लेकिन उधर से जवाब मिला कि हमारे पास वक्त नहीं है। मुलजिम के बारे में और कुछ जानना हो तो यहां आकर मालूम कर लीजिए। और उसने फोन वन्द कर दिया।

इंदु घर आकर चारपाई पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। हाय, मेरा तो करम फूट गया। मुझसे कहा भी नहीं कि जुआ खेलने लगे हैं। हे भगवान्, यह बुराई इन्हें कब से और कैसे लग गई? आदमी कितना बुरा है! उसके अन्दर शैतान छिपा बैठा है।...

आंसू निकल जाने से मन का ज्वार कुछ हलका पड़ा तो वह उठी। साड़ी से आंखें पोछीं और अस्तव्यस्त बालों को हाथ से ठीक कर पर्स उठा घर से बाहर हो गई। सोचती थी कि सामने आते ही पूछूंगी कि क्यों जी, दिखाने को तो तुम बड़े साधू बनते हो, पर तुम्हारे पेट में इतना पाप कहाँ से आया है? मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।...

थाना नजदीक ही था। वहां पहुँच कर इंदु ने थानेदार से कहा कि मैं नितिन चन्द्र शर्मा से मिलना चाहती हूँ, जिन्हें जुए में पकड़कर यहां लाया गया है।

थानेदार ने एक सिपाही साथ कर दिया, जो इंदु को पास के एक कमरे में ले गया। वहां जाकर उसने देखा कि हथकड़ी-बेड़ी से बंधे नौ आदमी बैठे हैं और उनके बीच कोने में सिमटा-सिमटाया रामू बैठा है। इंदु को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर ध्यानपूर्वक देखा। सचमुच रामू ही था। उनमें एक दीना भी था, जो कभी-कभी रामू के पास आया करता था और जिसे इंदु पहचानती थी। इंदु को देखते ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दीना बोला, "बहूजी, भगवान की कसम, खाकर कहता हूं जो हम दोनों में से किसी ने पत्तों से हाथ लगाया हो !"

रामू की गर्दन नीचे झुकी थी और वह पैर के अंगूठे से धरती कुरेद रहा था ।

उसे देखते ही क्रोध के मारे इंदु का मुँह लाल हो गया और उसका शरीर कांपने लगा । कठिनाई से अपने को संभालकर बोली, "कम्बख्त, नेतू मुझे मार डाला ।"

पास खड़े सिपाही ने कहा, "ये सब बड़े बदमाश हैं, मेम साब ! (रामू की ओर इशारा करके) और यह तो एक नंबर का पाजी है । छटा हुआ बदमाश ! जेब में कर्फ्यू पास रक्खे लाटसाब बना घूमता है और हमारे साहब से कहता है कि मैं तो उस कोठरी में अपने साथी से उधार के पैसे वसूल करने गया था । आया है साहूकार कहीं का !"

रामू ज्यों-का-त्यों गुमसुम बैठा रहा । इंदु समझ गई कि जेब में पास होने की वजह से उसने अपना नाम नितिन चन्द्र शर्मा बता दिया है । इंदु की जान-में-जान आई और वह पछताने लगी कि व्यर्थ ही उसने पति को जुए के व्यसन के लिए मन-ही-मन बुरा-भला कहा ।

उसने पूछताछ करके मालूम किया कि रामू को जमानत पर छोड़ा जा सकता है । बाद में उस पर मुकद्दमा चलेगा और संभवत: दस-पांच रुपया जुर्माना हो जायगा ।

इंदु का मन वैसे काफ़ी हल्का हो गया था, फिर भी उसे नितिन के बारे में चिन्ता तो थी ही । थाने से निकल कर चार कदम आगे बढ़ी तो देखती क्या है कि नितिन तेजी से कदम बढ़ाये चला जा रहा है । इंदु को यों पाकर पहले तो वह कुछ चौंका, फिर बोला, "माफ करना भई, काम में रात इतनी देर हो गई कि फिर मैंने आना ठीक नहीं समझा । तुम्हें बड़ी परेशानी हुई होगी । वह तो आंखों से ही दीख रहा है । लेकिन इंदु,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सच कहता हूं कि अच्छा हुआ, जो मैं नहीं आया। पुल के पास एक आदमी के रात किसी ने छुरा भोंक दिया। तुमने सुना ?"

इंदु के मन में बड़ा गुस्सा था और वह चाहती थी कि नितिन से बोले नहीं; पर छुरे की बात सुनकर उसका सारा गुस्सा काफूर हो गया। बोली, "मुझे परेशानी तो हुई; लेकिन सचमुच तुमने अच्छा किया जो नहीं आए। क्योंजी, वह आदमी मर गया ?"

नितिन ने कहा—"सुनते हैं, उसे अस्पताल भेज दिया गया था। विचारा क्या बचा होगा !"

फिर रास्ते चलते-चलते इंदु ने रामू के हाथ कर्फ्यू पास भेजने से लेकर थाने तक का पूरा हाल कह सुनाया। बोली, "जमानत पर इस दुष्ट को छुड़ाना जरूरी है क्या ? छुड़ाओ तो छुड़ा लाना; लेकिन घर म उसे पैर न रखने देना। पास लेकर कैसी फजीहत कराई है ! ऐसे नौकर से भगवान् बचाएं।"

रामू की बेवकूफी से इंदु को इतना कष्ट हुआ, इससे नितिन को थोड़ी झुँझलाहट तो हुई, पर उसके नितिन चन्द्र शर्मा बनने और एक अच्छा-खासा मजेदार झमेला खड़ा कर देने की बात पर उसे हंसी आए बिना न रही। बोला. "वाकई, यह कर्फ्यू पास है जला देने लायक। ज़रासी देर में नौकर को मालिक बना देता है।"

इंदु ने कृत्रिम रोष दिखाते हुए कहा—"तुम बड़े बुरे हो।"

और वह कोशिश करने पर भी होंटों पर मुस्कराहट नहीं रोक सकी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १२ :

जीवन के खण्डहर में

जाड़े के दिन थे। खाना खा-पीकर लेखराम और उसकी पत्नी धूप में बैठे बातें कर रहे थे। ज्योति चावलों की थाली घुटनों पर रक्खे उन्हें बीन रही थी। बीनती जाती थी और अपने बचपन की बातें सुनाती जाती थी। इतने में आंगन के द्वार पर पुनिया चमारिन ऐसे चुपचाप आ खड़ी हुई कि किसी को मालूम भी न हो। ज्योति की निगाह उस पर गई तो उसने पूछा, "क्या है री, पुनिया ?"

पुनिया कुछ बोली नहीं। एक लम्बी सांस उसने ली और खखार कर गला साफ किया, जैसे उसमें कुछ अटक रहा हो।

ज्योति ने फिर कहा, "अरी, बोलती क्यों नहीं है ?"

पुनिया के होठ कांप कर रह गए और ज्योति को लगा कि वह अभी रो पड़ेगी। जैसे-तैसे वह संभली। बोली, "बीबीजी, वे बहुत बीमार हैं।"

ज्योति और लेखराम ने उसकी बात सुनी और समझ गए कि क्या बात है। पुनिया चमारिन है। पिसाई-कुटाई करके अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालती है। उसका आदमी परमू प्रायः बीमार रहता है। महीने में मुश्किल से दस-पांच दिन अच्छा रहता होगा। लगकर काम नहीं कर पाता और पुनिया को ही घर भर का बोझ उठाना पड़ता है। उसके दिन कैसे कटते हैं, भगवान ही जानता है। बच्चे नंगे-धड़ंगे घूमते-फिरते हैं और रूखा-सूखा जो कुछ मिल जाता है, पेट में डाल लेते हैं। ये और इनके साथ बहुत से चित्र लेखराम और ज्योति की आंखों के आगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खिच गए । थाली को एक ओर कर ज्योति पुनिया के पास गईं । बोली, "क्यों, क्या बात है ?"

"क्या कहूँ, बीबीजी !" पुनिया ने बेबसी से कहा, "अबकी उन्होंने ऐसी खटिया पकड़ी है कि छोड़ने का नाम ही नहीं लेते । देह में हड्डियां-ही-हड्डियां रह गई हैं । आज सवेरे से बोलते भी बहुत कम हैं । हम लोगों की तरफ ऐसे घूर-घूर कर देखते हैं कि डर लगता है ।"

ढांढस बँधाते हुए ज्योति ने कहा, "घबरा मत पुनिया ! अच्छे हो जायंगे ।"

पुनिया का मानों मर्मस्थल छू गया । वह फूट-फूट कर रोने लगी । आँसू थमे तो बोली, "बीबीजी, भगवान मुझे उठा लें ।"

"ऐसी बात मुँह से मत निकाल, पुनिया । अपने आदमी और बाल-बच्चों के लिए तू बहुत दिन जीये ।"

लेखराम अबतक चुपचाप दोनों की बातें सुन रहा था । बोला, "मैं थोड़ी देर में शहर जाता हूँ । डाक्टर को लाकर परमू को दिखा दूँगा ।"

डाक्टर की बात सुनकर पुनिया की आशा बंधी । बोली, "बाबूजी, मैं जनम भर आपका गुन गाऊंगी ।"

ज्योति ने अन्दर से लाकर थोड़े से गेहूँ और आठ आने पैसे पुनिया को दिए । बोली, "तू घर जा । ये डाक्टर को लेकर आ जायंगे । घबराना नहीं । अच्छा ।"

पुनिया चली गई । लेखराम ने कहा, "ज्योति, इस दुनिया में तकलीफ बहुत है ।"

भीतर के तूफान को दबाते हुए पत्नी बोली, "यह भी कोई जिंदगी है !"

आगे पति-पत्नी में कोई बात नहीं हुई । दोनों अपने-अपने गए ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शहर से वे लोग तीन-चार मील दूर रहते हैं। डाक्टर को लेकर लेखराम आया तो शाम हो चली थी। दोनों सीधे पुनिया के घर पहुँचे। गाँव के छोर पर उसकी झोंपड़ी थी। झोंपड़ी क्या, खंडहर! भीतर घुसे तो एकदम सन्नाटा छाया था। सामने छप्पर के नीचे एक खाट पड़ी थी, जिसके पांयत पुनिया घुटनों पर सिर टिकाये बैठी थी। परमू उसी खाट पर लेटा था। देह उसकी इतनी सूख गई थी कि लगता था कि खाट पर कोई नहीं है। डाक्टर को आते देखकर पुनिया उठ खड़ी हुई और दोनों के बैठने के लिए उसने पीढ़े बिछा दिए। डाक्टर ने पास आकर परमू से पूछा, "कहो भई, क्या हाल है ?"

परमू ने जैसे-तैसे अपनी सूखी बाहें कथरी में से निकालीं और डाक्टर साहब के सामने हाथ जोड़कर बोला, "डाक्टर साब, मुझे बचा लो।"

डाक्टर ने उसे ध्यान से देखा। उसकी नाड़ी देखी और फिर नली से उसके फेफड़ों की परीक्षा की। यह सब करके उन्होंने पुनिया से बहुत से सवाल किए कि कब से बुखार आता है, खांसी कितनी है, दस्त तो नहीं हो रहे हैं. . . आदि-आदि। फिर बोले, "इन्हें अच्छी खुराक मिलनी चाहिए थी। खुराक न मिलने से यह हाल हुआ है।"

पुनिया क्या कहे! एक बार तो जी में आया कि कह दे कि ओ डाक्टर साहब, आप अच्छी खुराक की बात कहते हो! ठीक; लेकिन आप क्या जानो कि यह पुनिया पेट में डालने के लिए दो दाने भी कैसे जुटा पा रही है! पर वह बोली नहीं। डाक्टर ने कहा, "कल इन्हें अस्पताल ले आना। वहां भरती कर लूँगा। समझी।"

परमू ने टूटे-फूटे शब्दों में कहा, "डाक्टर साब, आप ही हमारे माई-बाप हैं।"

डाक्टर बोले, "धीरज रक्खो। सबका मालिक भगवान है। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, जरूर करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहकर डाक्टर लेखराम को साथ लेकर बाहर चले आए। बाहर आकर कहने लगे, "हालत इसकी बहुत बिगड़ गई है। बच जाय तब है !"

लेखराम स्तब्ध रह गया। उसकी निगाह उस टूटी-फूटी झोंपड़ी पर गई तो उसने देखा, पुनिया किवाड़ के सहारे बुत की तरह खड़ी है।

घर आकर डाक्टर ने चाय पी और थोड़ी देर रुक कर शहर चले गये। लेखराम ने ज्योति को सब हाल कह सुनाया और अंत में यह कहते-कहते कि डाक्टर का कहना है, वह बचेगा नहीं, उसका गला भर आया।

अगले दिन लेखराम के यहाँ एक मेहमान आ गए और दो दिन तक वह उनके साथ घिरा रहा। वह निश्चित था कि पुनिया परमू को अस्पताल ले गई होगी और उसका इलाज हो रहा होगा।

तीसरे दिन शहर गया तो डाक्टर से अचानक भेंट हो गई। इधर-उधर की बातें होने लगीं। डाक्टर ने कहा, "देखा तुमने ! वह मरीज आया नहीं।"

"अच्छा !"

"हांजी, मैंने उसके लिए सब इन्तजाम करा रक्खा था।"

लेखराम को झुंझलाहट हुई। डाक्टर की भलमनसाहत देखो कि अस्पताल में दाखिल करने के लिए तैयार हो गए ! इंतजाम कर दिया। लेकिन ये लोग हाथ-पैर हिलाना ही नहीं चाहते ! कोई घर बैठे उन्हें अमृत पिला जाय ! निकम्मे कहीं के ! एक के बाद एक, जाने क्या-क्या संगत-असंगत बातें लेखराम के मन में उठीं। उसने निश्चय किया कि सीधा पुनिया के घर जायगा और उसे खूब खरी-खोटी सुनावेगा।

घर लौट कर उसने ज्योति से कहा, "देखा तुमने ! पुनिया यहाँ कैसे आँसू ढरकाती थी ! लेकिन उससे इतना नहीं हुआ कि डाक्टर कह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गए थे तो परमू को अस्पताल ले जाती ! डाक्टर मुझे उलहना दे रहे थे ।"

फिर वह बिना और कुछ कहे गुस्से से भरा पुनिया के घर पहुँचा। किवाड़ें चौपट खुली पड़ी थीं। वह भीतर घुसा। पुनिया आंगन में बैठी थी। उसे देखते ही लेखराम ने कहा, "क्यों, पुनिया, तुम परमू को अस्पताल नहीं ले गईं ?"

पुनिया ने धीरे से सिर उठाया और धोती खींच कर मुँह पर कर ली। बोली, "किसे ले जाती बाबूजी ! वे तो अगले दिन ही ..."

लेखराम ने सुना। उसे लगा, जैसे उसके हृदय को किसी ने झकझोर डाला हो और वह वहीं गिर पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १३ :

चोरी !

कमरे को साफ कर झाड़ू पर कूड़ा रखे जब बिन्दू कमरे के बाहर निकला तो बराण्डे में बैठी मालती का ध्यान उसकी ओर अकस्मात चला गया। उसने देखा कि एक हाथ में झाड़ू है; पर दूसरे हाथ की मुट्ठी बंधी है और कुछ पीछे की ओर जान-बूझ कर आड़ में कर ली गई है। मालती को लगा कि हो-न-हो कमरे में से बिन्दू कुछ लाया है। उसने कहा--"बिन्दू !"

दो कदम पर बिन्दू, पर मानों उसने मालती की आवाज सुनी ही न हो। वह चलता ही गया; बल्कि मालती ने देखा कि उसकी पुकार पर बिन्दू की चाल में कुछ तेजी आ गई है। गुस्से में भर कर उसने कहा—"बिन्दू ! ओ बिन्दू ! ठहर, कहां जाता है ?"

इतना कहना था कि बिन्दू तो दौड़ने लगा और वह गया, वह गया। मालती के संदेह की पुष्टि के लिए यह सब काफी था। उसने तेजी के साथ कहा--"सुनते हो जी, बिन्दू कुछ लिये जा रहा है। जल्दी आओ।"

नंदन पास के कमरे में बैठा अपने पत्र के लिए कुछ लिख रहा था। मालती का यों चिल्लाना उसे अच्छा नहीं लगा और उसने चाहा कि टाल दे; पर मालती माने तब न। एक सपाटे में वह कमरे में आ गई और बोली--"झटपट उठो। देखो, बिन्दू मुट्ठी में दबाये कुछ ले गया है।"

नंदन ने कलम एक ओर रख दी और जैसे किसी ने जबर्दस्ती पकड़-कर उठा लिया हो, वह उठा। कमरे के बाहर आया तो देखता क्या है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि बिन्दू लौटकर आ रहा है। एक हाथ में झाड़ू है, दूसरा रीता है और नीचे लटका है। उसे देखते ही मालती उबल पड़ी—"क्यों रे बिन्दू के बच्चे, मैं गला फाड़ती रही और तू रुका तक नहीं। बोल, हाथ में क्या ले गया था ?"

बिन्दू का चेहरा फक। बोला—"कुछ नहीं, बीबीजी !"

"झूठा कहीं का ! क्यों रे, तेरे हाथ में कुछ नहीं था तो मेरे पुकारने पर फिर तू रुका क्यों नहीं ?" मालती ने रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

बिन्दू से बोला नहीं जा रहा था। कहे तो क्या कहे !

तब नंदन आगे बढ़ा। बोला—"बिन्दू, घबराओ नहीं। सच-सच बताओ कि तुम क्या ले गए थे।"

"सच बाबूजी, मेरे हाथ में झाड़ू थी और कूड़ा था।"

"फिर वही झूठ !" मालती ने चिढ़कर कहा। "इसे पुलिस में दे दो। लातों के देव कहीं बातों से मानते हैं ! इस बेईमान के ऊपर घर छोड़ रक्खा है तो इसलिए कि चीजें उठा-उठा कर ले जाय और ऊपर से झूठ बोले !"

नंदन ने मालती को शांत किया। कहा कि असली बात जानने का यह तरीका नहीं है। फिर बिन्दू को उसने प्यार से समझाया और कहा कि मैं तुमसे कुछ कहूँगा नहीं, ठीक-ठीक बताओ कि क्या ले गए थे। लेकिन बिन्दू घबराया-सा, खोया-सा, धरती की ओर ताकता रहा और नंदन का बहुत आग्रह हुआ तो उसने बस इतना ही कहा कि मैंने कुछ नहीं लिया है।

नंदन फिर भी खीजा नहीं। बोला—"अच्छा चल, देखूँ तू कूड़ा कहां फेंक आया है।"

बिन्दू पहले तो कुछ ठिठका, अनन्तर मुड़कर चुपचाप आगे हो लिया। उसके पैर मशीन की तरह चल रहे थे और कभी-कभी लगता था कि कहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा। आखिर तीनों जने मकान के पिछवाड़े पहुँचे और बिन्दू ने एक स्थान की ओर संकेत करके बताया कि कूड़ा वहां फेंका है। नंदन और मालती ने वह जगह देखी, उसके इर्द-गिर्द निगाह फेंकी; पर कहीं कुछ नहीं दीखा। बिन्दू हर दिन वहां कूड़ा ालता था। चारों ओर कूड़ा-ही-कूड़ा बिखरा पड़ा था। नंदन ने कहा—"बिन्दू, यों हैरान करने से क्या होगा, भाई? बता क्यों नहीं देता कि क्या लाया था?"

बिन्दू के होंठ खुले, जैसे कुछ कहना चाहता हो, पर फिर बन्द हो गए।

"हां, कहो, रुक क्यों गए?" नंदन ने शांत स्वर में कहा।

"बाबूजी...." बिन्दू फिर चुप।

"हां, कहो-कहो।"

"बाबू...जी, थोड़ी-सी मेवा नीचे पड़ी थी। उसे मैं उठा लाया।" बिन्दू कह तो गया, पर जैसे वह अनुभव कर रहा हो कि दुनिया का जाने कितना गहरा पाप उसने कर डाला है।

"मैं कहती थी न", मालती बोल उठी, "कि यह कुछ-न-कुछ ले ज़रूर ले गया है। देखा, मेरी बात सच निकली न?"

"मेवा का तुमने क्या किया, बिन्दू।"

"खा ली।"

"इतनी जल्दी? बिन्दू, झूठ मत बोलो। सच बता दो।"

"उधर फेंक दी।"

नंदन और मालती ने देखा कि उसकी बताई जगह पर थोड़े से काजू और कुछ किशमिशें पड़ी हैं। नंदन ने बिन्दू के कन्धे पर हाथ रक्खा और कहा—"मेरे साथ आओ, बिन्दू।"

बिन्दू चुपचाप मालिक के साथ चल दिया। नंदन उसे लेकर कमरे की ओर गया। मालती ने कहा—"आज इसने मेवा ली है, कल को कुछ और उठा ले जायगा। एक बार नीयत बिगड़ी, फिर हाथ थोड़े रुकता है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नंदन ने पत्नी की बात सुनी-अनसुनी कर दी। बिन्दू को साथ लेकर वह कमरे में गया और कनस्तर खोलकर उसमें से एक मुट्ठी मेवा उसके हाथ में देते हुए बोला—"बिन्दू, लो खा लो।"

पति के इस नरमी के व्यवहार से मालती आग-बबूला हो गई। बोली—"ऐसे ही तो नौकर बिगड़ते हैं। उसे कुछ कहना तो दूर, उलटे उसकी खुशामद कर रहे हैं।"

नंदन मुस्कराया। बोला—"मालती, चोर बिन्दू नहीं है, हम हैं। हम क्यों ऐसी चीजें खाएं जो सब को नहीं मिलतीं? इसी से तो चोरी की भावना को जन्म मिलता है। हम लोग रोज मेवा खाते हैं। एक दिन स विचारे का मन चल आया और थोड़ी सी ले ली तो क्या हो गया?"

"मैं कब कहती हूँ कि कुछ हो गया। बात मेवा की नहीं है, नीयत की है। इसका जी चला था तो मांग लेता। मैं न देती तब कहता। घर में पचास चीजें रहती हैं। यों तो जिस पर मन आएगा, उठा कर ले जायगा। और एक दिन यही होना है। वह न करेगा तो तुम करवाओगे।"

"मालती, यह बात नाराज होने की नहीं, सोचने की है। जबतक सब चीजें सब को नहीं मिलतीं, चोरी बन्द हो नहीं सकती। चोरी अच्छी चीज नहीं है; पर आज की स्थिति बड़ी लाचारी की हो गई है।" नंदन ने समझाते हुए कहा।

"देख लेना, एक दिन यही बिन्दू घर में से ट्रंक उठाकर न ले जाय तो मेरा नाम मालती नहीं।"

इतना कहकर मालती रसोई में चली गई और नंदन पुनः अपनी कुर्सी पर आ बैठा। पर मन उसका दूसरी ही दिशा में चल रहा था। थोड़ी देर वह सोचता रहा। फिर उसने विचारों को समेटा और लेख पूरा करने में लग गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेख पूरा हुआ तो काफी देर हो चुकी थी। वह उठा और सीधा रसोई में पहुँचा। देखता क्या है कि मालती सिल पर चटनी पीस रही है। नंदन ने कहा—बिन्दू कहां है, मालती ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"और कौन जाने ?"

"तुम जानो और तुम्हारा लाड़ला बिन्दू जाने।"

"उसे निकाल दिया ?"

"निकालनेवाली मैं कौन होती हूँ ?"

"कब से नहीं है ?"

"तभी चला गया था।"

"पानी भरने तो नहीं गया ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

नंदन थोड़ा हैरानी में पड़ा। मालती ने उसकी हैरानी देखी तो बोली, "तुम यहां के नौकरों को जानते नहीं। अपने घर में होता है तब भी उनका हाथ रुकता नहीं। कुन्दन के यहां कितना अनाज भरा है, फिर भी उस दिन आंख बच गई तो काका के यहां से गेहूं ले ही गया।"

नंदन जानता है कि बहस का अन्त नहीं। उसने बात आगे नहीं बढ़ाई और तौलिया उठाकर स्नान करने चला गया। स्नान करने के बाद उसने भोजन किया। थोड़ी देर पहले की इस बात का असर नंदन और मालती दोनों के मन पर था। भोजन करते समय पति-पत्नी दोनों चुप रहे और खा-पीकर अपने-अपने काम में लग गए।

दोपहरी बीती और शाम होने को आई; फिर भी बिन्दू न लौटा तो मालती के मन को अच्छा न लगा। चौके में अब भी बिन्दू का खाना पड़ा था। "झूठ बोला तो क्या, आखिर बालक ही तो है।" उसने सोचा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"भूखा जाने कहां भटक रहा होगा।" कई बार कमरे से बाहर आ-आकर मालती ने बिन्दू को देखा, फिर बगीचे का एक चक्कर लगाया कि कहीं किसी पेड़ के नीचे पड़ा सो न रहा हो। पर बिन्दू वहां कहां था जो मिलता ? मालती आकर पलंग पर पड़ गई और अपने को कोसने लगी कि जरासी बात को उसने इतना तूल क्यों दिया ! थोड़ी-सी मेवा ले गया तो क्या गजब हो गया।

सोचते-सोचते देर हो गई तो वह उठी और सहन में टहलने लगी। इतने में कुन्दन उधर से निकला तो मालती ने उत्सुकता से पूछा—"कुन्दन, तूने बिन्दू को देखा है क्या ?"

"बिन्दू !" कुन्दन बोला, "अरे, वह तो नदीवाली कोठरी में पड़ा है।"

मालती तत्काल पैरों में चप्पल डालकर बाहर हो गई।

लौटी तो बिन्दू उसके साथ था। बांह पकड़कर वह उसे नंदन के कमरे में ले गई और बोली, "देखी तुमने इसकी बात। यहां से गया है तब से वहां कोठरी में पड़ा है।"

नंदन ने कहा—"क्यों रे, वहां क्या कर रहा था ?"

बिन्दू चुप।

"मैं पूछता हूं, वहां क्या कर रहा था ?"

फिर चुप।

"अरे, बोलता क्यों नहीं ? मुंह में जबान नहीं है ?"

बिन्दू की आंखें डबडबा आईं।

मालती ने कहा—"इसका पागलपन देखो। सबेरे से कुछ नहीं खाया और भूखा-प्यासा वहां पड़ा है। चल, खाना खा।"

नंदन के कुछ कहने के पहले ही वह उसे चौके में ले गई और स्वयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परोसकर उसे खिलाने लगी। बोली—"भर-पेट खा लेना, भूखा मत रहना।"

नंदन ने पत्नी की बात सुनी और एक प्रसन्नता-भरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दौड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १४ :

बाबा की धरोहर

उस राह जब-कभी गुजरता हूँ, मन के भीतर एक हूक-सी उठती है। वही बाग है, वही आम, जामुन, आंवले, नीबू और नीम के पेड़ जिनके बीच अपने बाल्यकाल के अधिकांश सुखमय दिन मैंने बिताए थे। किसी भी चीज में अंतर नहीं आया। पर अब उन पर से हमारा अधिकार उठ गया है। वे बिराने हैं। यदि एक भी जामुन भूल से तोड़ लूं तो वह चोरी समझी जायगी और एक भी आम के लिए मुझे माली की डाट-फटकार सुननी पड़ेगी ! बाग को देखकर अब वेदना होती है। उसके एक-एक वृक्ष को बाबा ने पुत्रवत् पाला था और जब वे मृत्यु-शैया पर पड़े थे. उन्होंने कांपते स्वर में कहा था--"इस बाग की जी-जान से रक्षा करना। मेरी आत्मा स्वर्ग से झांक कर देखेगी और अगर इसकी एक पत्ती भी नष्ट हुई तो मुझे दुःख होगा।"

पिताजी की आँखों में आंसू भर आए थे। मेरा तब जन्म भी न हुआ था; पर पिताजी ने वह घटना न जाने कितनी बार सुनाई होगी। उस पैतृक संपत्ति को बाबा की एक पवित्र धरोहर मान कर पिताजी हमेशा उसकी रक्षा करते रहे। पर उस जगन्नियंता की इच्छा तो कुछ और ही थी। भाई की शादी पर लिए हुए ऋण के लिए जब इतनी तंगी हुई कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती तब परिस्थितिवश पिताजी ने अपमान से बचने के लिए उस बाग को ऋणदाता के हवाले कर दिया।

अपने बचपन का वह दिन मेरे मानस-पटल पर आज भी ज्यों-का-त्यों अंकित है। मैं उसे भूल जाना चाहता हूँ। उसकी स्मृति मुझे त्रस्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करती है। सच मानिए, ज्यों-ज्यों उसे भूलने का प्रयत्न करता हूँ, उसकी छाप और भी गहरी होती जाती है। मैं लाचार हूँ और मेरी यह लाचारी मेरी अंतर्निहित पीड़ा को और घनीभूत कर देती है।

जाड़ों की रात थी। ठंड इतनी जोर से पड़ रही थी कि दिन-डूबे ही सारा गांव शांत हो गया था। हम लोग अँगीठी के सहारे बैठे थे। माँ बहुत गंभीर थीं। हर रोज का-सा उन्मुक्त हास्य तो दूर, मुस्कराहट की एक क्षीण रेखा भी उनके चेहरे पर नहीं दीख पड़ती थी। अँगीठी से उठती जलते कोयलों की लाल रोशनी में मैंने देखा कि किसी भारी वेदना से वे पीड़ित हैं। शाल में सारे शरीर को लपेटे घुटनों पर मुँह टेक कर मानों वह किसी गहरे चिंतन में लीन हैं। वातावरण गंभीर और असह्य था।

कमरे के बाहर दूध-सी चांदनी छिटकी थी; पर माँ का ध्यान एक बार भी उस ओर नहीं गया।

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी। पर मेरी आंखों में नींद का नाम भी न था। मां की उस गंभीर चितायुक्त मूर्ति ने मेरे हृदय में एक विचित्र हलचल पैदा कर दी थी। थोड़ी देर बाद मां ने घुटनों पर से थोड़ा सिर उठा कर धीमे स्वर में कहा, "बेटा, सो जा।" उनकी वाणी में आर्द्रता थी।

मैंने कहा, "अम्मा !"

मां एकटक मेरी ओर देखती रहीं। उनका जी जैसे भीतर-ही-भीतर उमड़ रहा था। मन में आया कि थोड़ा आगे सरक कर अपनी उस जननी चुपट जाऊँ और कहूँ कि ओ अम्मा ! तुम ऐसी क्यों होती हो ? तुम्हारी यह चिता तुम्हारे इस बेटे के लिए असह्य है। और अपने हाथों से उनकी गीली आंखों को पोछ दूँ। पर यह सब करने की शक्ति मुझमें नहीं थी ! मेरा शरीर जैसे निष्प्राण था।

थोड़ी देर और बीती। माँ के होठ कुछ काँपते से दीखे और जैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी विवशता के भाव से भर कर मां ने अपनी दोनों बाहें फैला कर मेरी गर्दन में डाल दीं और मुझे अपनी ओर खींच कर बोलीं, "बेटा !"

कहते-कहते मां का कण्ठ रुँध आया।

मैंने कहा, "क्या है अम्मा ?"

माँ से कुछ कहते न बना। ओठ खुले कि कांप कर रह गए। फिर वही नीरवता !

पिताजी अदालत के काम से बाहर गए थे और दोपहर को जब से उनकी चिट्ठी आई है, माँ का रूप ही बदल गया है। घर के कामों में तब से उन्होंने थोड़ा बहुत बेमन जो भी भाग लिया हैं, उसमें एक नहीं अनेक चूकें हुई हैं। नौकर से मैंने कभी भी उन्हें कहा-सुनी करते नहीं देखा था। आज जरा-सी भूल पर उस बेचारे को जाने क्या-क्या सुनना पड़ा।

माँ में असाधारण साहस है। बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना से भी वह विचलित नहीं होतीं। पर आज ऐसी कौनसी बात हुई है कि जिससे वह इतनी बदल गई हैं ? हजार प्रयत्न करने पर भी मैं यह न समझ सका।

रात गाढ़ी हो आई। माँ की बाहें शिथिल निर्जीव-सी मेरे कंधे पर पड़ी रहीं।

कुछेक देर के बाद जैसे उनके शरीर में चेतना आई। बांहें कुछ कड़ी हुईं। बोलीं, "बेटा, तू क्या समझेगा कि आज से तेरे बाप दो भाई रह गए। एक भाई उठ गया—वह भाई जो उन्हें हृदय से भी ज्यादा प्यारा था। वह चला गया, चला गया। अब तुम उसके लिए तरस ही सकते हो।"

मेरी समझ में कुछ भी न आया। माँ इस समय मेरे लिए एक पहेली थीं। ज्यों-ज्यों समझने का प्रयत्न करता था त्यों-त्यों और भी उलझता जाता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

माँ कहती गईं, "हमारा घर अब सूना हो गया। वह गया तो बचा ही क्या? तेरे बाप का सीधा हाथ था। तेरे बाबा की निशानी थी। मरते समय वह उसे तेरे बाप के हाथ सौंप गए थे। स्वर्ग से उनकी आत्मा देखती थी कि कहीं उसके पालन-पोषण में कोई कमी तो नहीं आई। आज तेरे उन बाबा को..."

कहते-कहते माँ का हृदय भर आया। मैं हैरान था।

मैंने कहा, "अम्मा, मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

माँ उठीं और आले में से उठाकर एक कागज मेरे हाथ में थमा दिया। लालटेन के धुँधले प्रकाश में मैंने उसे खोल कर देखा। पिताजी की चिट्ठी थी। अन्य बातों के साथ लिखा था:

"बाग का बैनामा आज ठाकुर के नाम करा दिया। बाग गया, समझो मेरे प्राण ही चले गए। नन्दन से कहना कि अब वह उधर न जाय। न माने तो जबर्दस्ती रोक लेना। अब वह हमारी चीज नहीं है। कलमी आमों की कतारें, नीबू के पेड़ों की झुरमुट, जामुन के ऊँचे-ऊँचे पेड़, नन्दन समझे कि अब हमारा कुछ भी नहीं है।..."

माँ बोलीं, "आज तू चाहे इस बात को न समझे; पर जब बड़ा होगा, यही चीज तुझे दुख देगी। और इस समय भी क्या उसका अभाव तुझे खटकेगा नहीं ?"

तीसरे दिन पिताजी लौटे। उनका चेहरा उतरा हुआ था, मानों महीनों के रोगी हों। मुँह की आभा विलीन हो गई थी। एक प्रकार का पीलापन-सा छाया हुआ था। माँ चौके में काम कर रही थीं। बाहर आईं और पिताजी के चरणों पर सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगीं। तीन दिन का या जाने कितने दिनों का गुबार आँसुओं के रूप में बाहर निकल पड़ा। पिताजी की आंखें भी भर आईं। कमरे के एक कोने में मैं चुपचाप खड़ा था। यकायक दौड़ कर मैं पिताजी से चुपट गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पिताजी का धैर्य छूट गया। मेरी पीठ पर अपने कांपते हाथों से थपकी देते हुए बोले, "नन्दू ! बेटा। धीरज रक्खो। जो चीज तुम्हारे अभागे बाप ने खो दी है, उसे तुम एक दिन पा भी तो सकते हो। उसे ही क्यों, उससे भी बढ़िया, जिसे देखकर तुम्हारे बाबा की आत्मा एक प्रकार की तृप्ति, एक प्रकार का संतोष अनुभव कर सुख-शान्ति पावेगी। नन्दू, यों हिरास मत हाओ। मन को उदास न करो, बेटा !"

फिर माँ को ढाँढस बंधाने के लिए उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। कहा कि पैसा तो हाथ का मैल है और लक्ष्मी कभी किसी के पास थिर रही है जो हमारे पास रहती ! भले दिन फिर लौटेंगे, तब एक नहीं, चार बाग हम रख सकेंगे।

कह नहीं सकता कि पिताजी के इन शब्दों से माँ को सांत्वना मिली या नहीं, पर शायद यह सोचकर कि पिताजी के मन पर वैसे ही काफी बोझ है और उनकी इस प्रकार की दुर्बलता से उनकी पीड़ा और बढ़ेगी वह आंखें पोंछती हुई उठीं और मुंह धोकर चौके में जाकर फिर काम में लग गईं।

इसके बाद कई दिन तक घर में उदासी छाई रही। पिताजी बहुत कम बोलते थे और माताजी भी प्रायः मुँह न खोलती थीं। रात को अँगीठी के सहारे हम लोग बैठते थे; पर अधिकांश चुप, मानों हमारा हृदय भावों से शून्य हो गया हो या भाव इतने भर आए हों कि उनका कह सकना हमारे लिए असंभव हो गया हो।

× × ×

उक्त घटना को हुए आज चार वर्ष बीत चुके हैं। मुझे याद है, पिताजी की सख्त मनाई के बाद भी कई रोज लोगों की निगाह छिपाकर बाग में चला गया था और अपने चिर-परिचित बन्धुओं को आलिंगन में भर कर खूब रोया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर आज की स्थिति भिन्न है । अपने उस बाग से कहीं अधिक विशाल, कहीं ज़्यादा सुन्दर बाग में रहता हूँ । चारों ओर आम, नीबू, जामुन, बेल तथा अन्य अनेक प्रकार के पेड़ हैं । उनसे मेरा निकटतम संपर्क है । कमरे के भीतर से ही, जब चाहूँ, उन्हें देख सकता हूँ । बाहर जाकर जी भर कर उनसे मिल सकता हूँ, उनके फलों का उपयोग कर सकता हूँ; पर ये वृक्ष मुझे अपने बाबा की धरोहर की याद दिला देते हैं । क्या कभी उसे लौटा सकूँगा ?

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १५ :

असतो मा सद्गमय

प्रवीण प्रांतीय सरकार के सचिवालय में ऊँचे ओहदे पर काम करता था। वेतन अच्छा और रहने के लिए खुली हवा में लम्बा-चौड़ा बँगला। नौकरी के कुछ ही दिन बाद उसने एक कार भी ले ली थी। इस प्रकार जीवन आनंदपूर्वक बीत रहा था। सब तरह का आराम। बैंक में हिसाब खुला तो देखते-देखते खासी रकम इकट्ठी हो गई। मिलने-जुलने वाले लोगों का ताँता बँधा रहता था और सभा-सोसाइटी में वह जहाँ कहीं जाता था, उसे मान का दर्जा मिलता था। लोग कहा करते थे कि प्रवीण तकदीर का बड़ा सिकंदर है। कितनी गरीबी में पढ़ा, कितनी मुसीबत में दिन काटे; लेकिन भाग्य जब देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। मेहनत कभी अकारथ नहीं जाती और सब्र का फल हमेशा मीठा होता है।

प्रवीण लोगों की बात सुनता था और देखने को मुसकराहट की एक लहर उसके चेहरे पर दौड़ जाती थी; लेकिन बाहर से वह जितना शांत दीख पड़ता था, भीतर से वह उतना ही अशान्त था। रह-रह कर एक ही प्रश्न उसके मन में उठता था—वह किसके लिए अपना खून-पसीना एक कर रहा है? उसके अन्तर से जो जवाब उठ कर आता था, उससे उसका समूचा गात सिहर उठता था। सचमुच वह विदेशी हुकूमत के लिए, विदेशियों के स्वार्थ के लिए, ऐसा कर रहा है। मालिक सात समुन्दर पार बैठा है और उसकी मशीन यहाँ अपना काम कर रही है, लोगों को तबाह कर रही है। प्रवीण, तू ऊँचा वेतन पाने का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधिकारी अपने को कैसे मान सकता है? जरा सोच तो कि तेरा वेतन आता कहाँ से है? क्या उन गरीबों से नहीं जिनके पास खाने को अन्न नहीं है, तन ढकने को कपड़े नहीं हैं और जिनके बच्चे दिन-रात बिलखते और तड़पते हैं ? धिक्कार है तेरे वेतन पर!

प्रवीण दिन भर फाइलों में खोया रहता है; पर जब अकेला होता है तो यही सब सोचता रहता है और तब उसका वेतन, बँगला, कार तथा आराम के अन्य उपकरण उसे काटने लगते हैं। छिः-छिः, लाखों को तबाह करके एक आदमी चैन की बंसी बजावे, यह कहाँ का न्याय है। अरे, यह तो पाप है। हाँ, जघन्य पाप है । और सुन प्रवीण, तू क्या कम पापी है ?

मन की ऐसी स्थिति से जब वह गुजर रहा था तो एक दिन उसके अफसर मि० ह्यूम उसे अपना निजी काँच का कारखाना दिखाने ले गए। यह कारखाना कुछ ही दिन पहले उन्होंने खोला था और अच्छा चल रहा था। लगभग साठ-सत्तर स्त्री-पुरुष उसमें काम करते थे। बड़ी-बड़ी जलती भट्ठियों में काँच का गलाना और फिर उनसे तरह-तरह की चीजें बनाना। लम्बी-लम्बी फुंकनी मुंह से फूंकते-फूंकते लोगों की गर्दनों की खालें लटक आई थीं और भट्टी की आँच से स्त्री-पुरुषों के चेहरे और शरीर काले पड़ गए थे। प्रवीण ने वह सब देखा और वह एक लम्बी साँस खींच कर रह गया।

साहब बोला—"मि० प्रवीण, मैं इस कारखाने को और बढ़ाना चाहता हूँ। सारे मुल्क को माल दे सके, इस माफिक बनाना चाहता हूँ। आप इसके फैलाव की स्कीम बनाओ। इधर की जो जमीन है वह सस्ते में मिल सकती है और यहाँ कई भट्टियाँ आसानी से और बनाई जा सकती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रवीण ने उत्तर में कुछ नहीं कहा; पर उसकी निगाह फौरन साहब के बढ़िया सूट पर और उसके भरे हुए चेहरे पर गई, क्षण भर रुकी और फिर पहुँची भट्टी के आगे तपते नर-कंकालों पर, जिनके शरीर की हड्डी-हड्डी गिनी जा सकती थी। उसने मन-ही-मन कहा—"हे भगवान्, यह सब क्या है!"

इसके तीसरे दिन एक घटना और घटी। उसके पास की कोठी में मि० बटलर रहते थे। शहर से थोड़ी दूर उनका लम्बा-चौड़ा फार्म था, जिसके चारों ओर कंटीले तारों की बाड़ लगा कर उन्होंने उसकी सीमा बाँध ली थी। उस फार्म पर होकर कई देहातों को सीधी पगडंडियाँ जाती थीं। तार लग जाने से बेचारे ग्रामवासियों को लगभग मील भर का चक्कर लगने लगा। एक दिन एक बूढ़ा मजूर कहीं से काम कर के दिन-छिपे गाँव लौट रहा था। बुखार चढ़ा था। एक-एक पग चलना उसके लिए दूभर हो रहा था। उसने सोचा कि तारों को लाँघ कर निकल जाऊँ तो काफी चक्कर बच जायगा और जल्दी घर पहुँच जाऊँगा। सो उसने जैसे-तैसे तारों को लाँघा; लेकिन मुश्किल से चार कदम बढ़ा होगा कि मि० बटलर के आदमी ने उसे आ पकड़ा और साहब के पास ले गया। बुड्ढा बहुतेरा गिड़गिड़ाया कि सरकार, ताप के मारे मैं मरा जा रहा हूँ; लेकिन साहब का दिल न पसीजा। उसने बूट की आठ-दस ठोकरें उसके लगाई और दिन भर की मजूरी के जितने पैसे उसके पास थे, छीन लिए। इतना ही नहीं, जहाँ से उसने तार लाँघे थे, वहां तारों के बाहर उसे फिर छुड़वा दिया। उठते-बैठते जाने कैसे वह बेचारा काफी रात गए घर पहुँचा।

दूसरे दिन इसकी खबर चारों ओर फैल गई। लोगों के हृदय में क्रोध उमड़ा; लेकिन उन गौरांग महाप्रभु का कोई क्या बिगाड़ सकता था!

प्रवीण ने सुना तो खून का घूट पीकर रह गया और अगले दिन उसने जो कुछ किया उससे उसका परिवार, उसके मित्र और उसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साहब, सब आश्चर्य-चकित रह गए। उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। साहब ने बहुतेरा समझाया, पत्नी ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर उस पर दबाव डाला; लेकिन प्रवीण ने अपना कदम वापस नहीं लिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि अत्याचार, लूट और शोषण को कम करने में मैं सीधी मदद नहीं दे सकता तो उनके बढ़ाने में भी मैं योग नहीं दूंगा।

× × ×

बाद की कहानी बड़ी लम्बी और करुण है। प्रवीण का खर्च पूरा था और हाथ खुला था। परिणाम यह हुआ कि जो कुछ बैंक में जमा था तेजी से निकलता गया और वह दिन आते देर न लगी जब एक कौड़ी भी उसके हिसाब में न बची। लोग उसे देख कर हँसते थे। कहते थे—प्रवीण ने अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारी है। कैसी अच्छी नौकरी थी। और कोई होता तो चार-छः लाख पैदा कर लेता और जिन्दगी भर चैन करता; लेकिन प्रवीण तो मूर्ख है।

इसके बाद चार बरस तक प्रवीण घर पर बैठा रहा। कोठी छोड़ कर उसने शहर में एक छोटा-सा मकान ले लिया और कार बेच दी। वह और उसका सारा परिवार मुसीबत में पड़ गया। इस बीच भारत स्वतंत्र हो गया। प्रवीण को उस दिन जितनी प्रसन्नता हुई, कोई कल्पना नहीं कर सकता। घर में कुछ भी नहीं था, फिर भी उत्सव मनाने के लिए वह कुछ रुपये कहीं से उधार लाया और कई गरीबों को अपने यहाँ भोजन कराया।

स्वतंत्रता के बाद जो विषम स्थिति पैदा हुई, उससे प्रवीण की मुसीबतें दूनी-चौगुनी हो गईं। उसने सोचा कि अब अपनी सरकार है तो नौकरी कर लेने में कोई हानि नहीं है; किन्तु जहाँ कहीं वह गया, अपना-सा मुंह लेकर लौट आया। कहीं भी जगह नहीं मिली। उधर स्त्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के आभूषण सब पेट में जा चुके थे और अब मित्रों का भी कोई सहारा न रहा था। कोई कहाँ तक मदद करता और सबकी अपनी-अपनी कठिनाइयाँ थीं।

नौकरी के लिए चक्कर लगाते-लगाते प्रवीण थक गया तो एक दिन उसने अपना थोड़ा-बहुत जो भी सामान बचा था उसे बाँधा और पास के देहात में जाने के लिए तैयार हो गया। स्त्री ने कहा—"बिना पैसे क्या देहात में चल जायगा?"

प्रवीण बोला—"मैं नहीं जानता कि चलेगा या नहीं।"

"बच्चों की पढ़ाई कैसे होगी?"

"क्या देश के सारे बच्चे पढ़ते ही हैं?"

"वहाँ खाओगे क्या?"

"रोटी।"

"कहाँ से?"

"जहाँ से अबतक खाते रहे हैं।"

कृष्णा जानती थी कि प्रवीण से वह पार नहीं पा सकेगी; पर मन में उसके बड़ा दुःख था। उसने एक बार सोचा कि कह दे, अच्छी बात है। तुम मेरी बात नहीं मानते तो जो तुम्हारे जी में आए, करो। मुझे जो दीखेगा, वह मैं करूँगी। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। लेकिन प्रवीण जब ताँगा ले आया और उस पर सामान लद चुका तो वह चुपचाप उठी और ताँगे पर जा बैठी।

यह जीवन एक प्रयोग है। कुछ आदमी अपने प्रयोग में सफल हो जाते हैं। दुनिया उन्हें बुद्धिमान कहती है और उनका मान करती है। जो असफल होते हैं उन्हें मूर्ख की संज्ञा देती है और उनका उपहास करती है। वह भूल जाती है कि सफलता के पीछे न जाने कितने असफल प्रयोगों का भी पुण्य संचित रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रवीण के सामने देहातों का बड़ा उल्लासपूर्ण चित्र था। वहाँ पहुँचा तो कुछ ही दिन में उसे पता चल गया कि वह भ्रम में था। देश के आजाद होने का वहाँ कोई भी चिन्ह दिखाई नहीं देता था, बल्कि वहाँ की स्थिति पहले से भी गई-बीती थी। पहले कोई अतिथि आता था तो परिचय न होने पर भी लोग उसका यथाशक्य आदर-सत्कार करते थे; लेकिन आज की हालत उससे उल्टी थी। कौन आता है, कौन जाता है, यह देखने का जैसे किसी को अवकाश ही न हो। सब अपनी-अपनी कठिनाइयों में घिरे थे। हर तरफ अंधकार छाया है और लोगों को मार्ग नहीं सूझ पा रहा था।

प्रवीण ने यह सब देखा तो व्यंग से हँस पड़ा। बोला—"जब तक दुनिया अपने स्वार्थ में अंधी बनी रहेगी तबतक उसे रास्ता सूझ नहीं सकता। आदमी की कीमत का माप ही आज कुछ दूसरा हो गया है।"

तभी अंदर से किसी ने कहा—ओ प्रवीण, तू दुनिया की ओर देखता ही क्यों है? अपनी ओर देख। बस वही काफी है। आज सारी गड़बड़ इसी से है कि लोग दुनिया की ओर देखते हैं, अपनी ओर उनकी निगाह नहीं जाती।

प्रवीण जैसे सोते से जगा। उसे रास्ता मिल गया।

× × ×

कृष्णा ने अपने छोटे बच्चे को छोड़ कर शेष दो को अपने भाई के पास पढ़ने के लिए भेज दिया और स्वयं उस देहात में एक छोटी-सी पाठ-शाला खोल ली, जिसमें छोटी उमर के बहुत से बच्चे पढ़ने आने लगे।

प्रवीण भी वहीं रहता है। दिन भर लोगों के बीच घूमता है, उनके दुख-दर्द में हाथ बंटाता है और शाम को मुखिया की चौपाल में बैठ कर उन्हें ज्ञान की बातें सुनाता है, बहुत सी बातें और फिर अंत में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहता है—"भैया, हमारी सारी मुसीबतें शैतान की पैदा की हुई हैं। वह शैतान बाहर नहीं हमारे भीतर ही बैठा है। हमारे अन्दर की बुराइयाँ ही वह शैतान है। इधर-उधर से निगाह हटा कर हम अपने अंदर देखें, शैतान को पहचानें और उसे निकाल बाहर करें। शैतान के चंगुल से छूट कर हम ईश्वर के बंदे बन जायंगे और तब हमारी मुसीबतें अपने आप दूर हो जायगी। क्यों, है न?"

लोग समर्थन में सिर हिला देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १६ :

महायज्ञ का पुरस्कार

एक कथा सुनने में आती है:—

एक धनी सेठ थे। अत्यन्त विनम्र और उदार। धर्मपरायण इतने कि भगुवा वस्त्र पहने कोई भी साधु-सन्त उनके द्वार आ जाता तो निराश न लौटता। भरपेट भोजन पाता। भंडार का द्वार सब के लिए खुला था। जो हाथ पसारे, वही पावे। सेठ ने यज्ञ भी बहुत से किए थे और दान में न जाने कितना धन दीन-दुखियों को दिया था।

पर अकस्मात् दिन फिरे और सेठ की हालत बहुत खराब हो गई। खजाने खाली हो गए। साथी-संगियों ने अपनी राह पकड़ी और यहाँ तक नौबत आई कि सेठ भूखों मरने लगे।

उन दिनों एक प्रथा प्रचलित थी। यज्ञों का क्रय-विक्रय हुआ करता था। छोटा-बड़ा जैसा यज्ञ होता, तदनुसार मूल्य मिल जाता। जब बहुत तंगी हुई तो एक दिन सेठानी ने कहा, "न हो तो एक यज्ञ ही बेच डालो।"

सुन कर पहले तो सेठ बहुत दुखी हुए; पर बाद में अपनी मुहताजी का विचार कर यज्ञ बेचने के लिए तैयार हो गए।

सेठ के यहाँ से दस-बारह कोस की दूरी पर कुन्दनपुर नाम का एक नगर था, जिसमें एक बहुत बड़े सेठ रहते थे। लोग उन्हें 'धन्नासेठ' कहा करते थे। यह भी अफवाह थी कि उनकी सेठानी को कोई दैवी शक्ति प्राप्त है, जिससे वह तीनों लोकों की बात जान लेती हैं। धन की उनके पास कमी न थी। विपदाग्रस्त सेठ ने उन्हीं के हाथ यज्ञ बेचने का विचार किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूर की मंजिल थी। सेठानी जैसे-तैसे पड़ोसी से थोड़ा-सा आटा माँग कर लाईं और चार मोटी-मोटी रोटी बना कर सेठ के साथ बाँध दीं। बड़े तड़के उठ कर सेठ कुंदनपुर की ओर चल दिए। गर्मी के दिन थे। सेठ ने सोचा कि सूरज निकले तबतक जितना रास्ता पार कर-लूं, उतना ही अच्छा। यह सोच कर वह खूब तेज चलने लगे। लेकिन आधा रास्ता पार करते-करते धूप में इतनी तेजी आ गई कि चलने में उन्हें कष्ट होने लगा। पसीने से उनकी सारी देह लथपथ हो गई और भूख भी सताने लगी।

सामने वृक्षों की एक घनी कुंज और कुआँ देख कर सेठ ने विचार किया कि यहाँ थोड़ी देर रुककर भोजन और विश्राम कर लेना चाहिए। यह सोच वह उस कुंज की ओर बढ़े। पोटली में से लोटा-डोर निकाल पानी खींचा और हाथ-पैर धोए। अनन्तर एक लोटा पानी ले एक पेड़ के नीचे आ बैठे और खाने के लिए रोटी निकाल कर कौर तोड़ने ही वाले थे कि देखते क्या हैं कि निकट ही, कोई हाथ भर की दूरी पर, एक कुत्ता पड़ा छटपटा रहा है। बेचारे का पेट कमर से लगा था। सेठ को रोटी खोलते देख वह बार-बार गर्दन उठा कर कुछ याचना करना चाहता था; पर दुर्बलता के कारण उसकी गर्दन गिर-गिर जाती थी।

सेठ का हृदय दया से भर आया,—"बेचारे को कई दिन से खाना नहीं मिला दीखता। तभी तो उसकी यह हालत हो गई है।" सेठ ने एक रोटी हाथ में उठाई और टुकड़े-टुकड़े कर के कुत्ते के सामने डाल दी। कुत्ता भूखा तो था ही। धीरे-धीरे सारी रोटी खा गया। अब उसके शरीर में थोड़ी जान आती दीखी। मुंह उठाकर वह सेठ की ओर देखने लगा, मानों उनकी इस कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करता हो। पेट अब भी उसका कमर से लगा था। सेठ ने सोचा कि एक रोटी इसे और खिला दूं तो फिर यह चलने-फिरने योग्य हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह सोच उन्होंने एक रोटी और उठाई और टुकड़े-टुकड़े कर के उसे खिला दी। दो रोटी खाकर कुत्ते के शरीर में शक्ति आ गई और वह खिसक कर सेठ के समीप आ गया। सेठ ने देखा कि अभी वह अच्छी तरह चल नहीं पा रहा है। आस-पास दूर तक कोई बस्ती दिखाई नहीं दे रही थी। सेठ ने सोचा--"एक रोटी इसे और दे दूं तो फिर यह अच्छी तरह चल-फिर सकेगा, नहीं तो चार कदम खिसक कर फिर गिर जायगा और तड़प-तड़प कर मर जायगा। मेरा क्या है, जैसी दो खाईं वैसी एक। और फिर शाम तक तो कुंदनपुर पहुंच ही जाऊँगा।"

सेठ ने तीसरी रोटी उठाई और कुत्ते को खिला दी।

एक रोटी बची। उसे लेकर वे स्वयं खाने के लिए बैठे। कुत्ते की आँखें अब भी उनकी ओर जमी थीं। सेठ ने देखा कि उन आँखों में करुणा भरी है। उल्लास नहीं आया है। सहसा सेठ के मुंह से निकला, "हाय, ! बेचारा जाने कितने दिन से यह यहाँ भूखा पड़ा है।"

कुत्ता टुकुर-टुकुर उनकी ओर देख रहा था। सेठ उसकी तरफ से आँखें न हटा सके। सहसा उनके मन में आया, "मेरा काम तो पानी से भी चल सकता है। इस बेचारे मूक और बेबस जीव को यह रोटी और मिल जाय तो फिर निश्चय ही इसमें इतनी ताकत आ जायगी कि किसी गाँव तक पहुँच सके।"

सेठ ने अधिक सोच-विचार नहीं किया और वह अन्तिम रोटी भी कुत्ते को खिला, स्वयं एक लोटा जल पी, थोड़ा विश्राम ले, अपना रास्ता पकड़ा।

चले-चल चले-चल दीया-जले वे कुंदनपुर पहुँचे। धन्नासेठ की हवेली पर पहुंचे तो उन्होंने उठकर सेठ का अभिवादन किया। पूछा, "कहो सेठ, कैसे आना हुआ ?"

सेठ ने कहा--"संकट में हूँ और एक यज्ञ आपके हाथ बेचने आया हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इतने में सेठानी ने कहा, "सुनो सेठ, यज्ञ खरीदने के लिए हम तैयार हैं, पर तुम्हें अपना महायज्ञ बेचना होगा।"

"महायज्ञ !"

"हाँ, वही जो तुमने आज किया है।"

सेठ बड़े आश्चर्य में पड़े। "महायज्ञ और आज !" वे समझ गए कि सेठानी उनका मजाक उड़ा रही हैं। उन्होंने विनम्र भाव से कहा, "आप आज की कहती हैं! मैंने तो कई बरस से कोई यज्ञ नहीं किया। मेरी स्थिति ही ऐसी नहीं थी।"

सेठानी ने गंभीर मुद्रा से कहा—"नहीं सेठ, आज तुमने यज्ञ किया है। यज्ञ नहीं, महायज्ञ ! उसे बेचोगे तो हम खरीदेंगे, नहीं तो नहीं।"

सेठ विस्मित-विमूढ़ से हो गए। उन्हें निश्चय हो गया कि इन लोगों को यज्ञ खरीदना नहीं है। इसीलिए ऐसी बातें की जा रही हैं।

सेठानी ने कहा, "बोलो सेठ, राजी हो ?"

सेठ ने खिन्न भाव से कहा—"सेठानी, हँसी छोड़िए। काम की बात कीजिए। बरसों से मैंने तो कोई यज्ञ नहीं किया। आप आज की कहती हैं !"

सेठानी ने तब समझाया कि आज रास्ते में स्वयं न खाकर चारों रोटियाँ क्षुधा-पीड़ित कुत्ते को खिला दीं, वह आपने महायज्ञ किया। आजकल धन-दौलत लुटाकर यज्ञ करने और उसके द्वारा यश कमाने की प्रथा है। लेकिन बिना फल की आशा रक्खे निस्स्वार्थ भाव से जो कर्म किया जाता है, वही सच्चा यज्ञ है, वही महायज्ञ है।

सेठ मानों आसमान से नीचे गिरे—भूखे को अन्न देना सभी का कर्त्तव्य है। त्याग उसमें क्या ?

सेठानी ने कहा—"समझे सेठ। बोलिए, क्या आप इस यज्ञ को बेचने के लिए तैयार हैं ?"

सेठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप पोटली उठाई और हवेली से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बाहर चले आए । संकट भले ही हो, पर जो मानवोचित कर्त्तव्य था, उसे कर के क्या उसका मूल्य लगाना कभी संभव हो सकता था ?

× × ×

पास की धर्मशाला के चबूतरे पर सेठ ने भूखे पेट जैसे-तैसे रात बिताई और पौ-फटे वहाँ से चल कर अगले दिन शाम को अपने घर आ पहुँचे। सेठानी बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठी थीं। सेठ को रीते हाथ लौटते देख आशंका से काँप उठीं। बोलीं—"क्यों, धन्नासेठ मिले ?"

सेठ ने आद्योपान्त सारी कथा कह सुनाई। सुन कर सेठानी की समस्त वेदना जाने कहाँ विलीन हो गई। हृदय उल्लास से भर आया। विपत्तियों के भार से दबे होने पर भी सेठ ने धर्म नहीं छोड़ा ! वह धन्य हैं ! सेठ के चरणों की रज मस्तक पर लगाते हुए बोलीं—"हम धीरज रक्खें। "भगवान सब भला करेंगे।"

रात का अन्धकार फैलता जा रहा था। सेठानी उठकर दीया जलाने के लिए दालान में आईं तो रास्ते में किसी चीज की ठोकर लगी। गिरते गिरते बचीं। संभल कर आले तक पहुँचीं और दीया जला कर नीचे की ओर निगाह डाली तो देखती क्या हैं कि देहली के सहारे एक ऊँचा-ऊँचा पत्थर है, जिसके बीचोंबीच एक लोहे का कुन्दा लगा है। इसी कुंदे से उन्होंने ठोकर खाई थी ।

शाम तक तो वहाँ पत्थर का नाम-निशान भी नहीं था। अब यह अकस्मात कहाँ से आ गया ! सेठानी भौचक्की-सी खड़ी रहीं। फिर सेठ को बुला कर बोलीं, "देखो तो, यह पत्थर यहाँ कहाँ से आ गया ?"

सेठ भी अचरज में रह गए। दीये की टिमटिमाती रोशनी में उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो पता चला कि वह तो किसी चीज का ढकना है। आखिर यह माजरा क्या है ? सेठ ने कुन्दे को पकड़ कर खींचा तो पत्थर ऊपर उठ आया और अन्दर जाने के लिए सीढ़ियाँ निकल आईं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सावधानी से सेठ और सेठानी दीया हाथ में लिए अन्दर उतरे। कुछ सीढ़ियाँ पार करते ही इतना प्रकाश सामने आया कि उनकी आँखें चौंधियाने लगीं। सेठ ने देखा, वह तो एक विशाल तहखाना है और जवाहरातों से जगमगा रहा है।

दैव की इस माया का रहस्य उनकी समझ में नहीं आया! दोनों निस्तब्ध खड़े थे।

तभी अदृश्य पर स्पष्ट स्वर में उन्हें सुनाई दिया, "ओ सेठ! स्वयं भूखे रह कर अपना कर्त्तव्य मान कर प्रसन्न-चित्त से तुमने मरणासन्न कुत्ते को चारों रोटियाँ खिला कर उसकी जान बचाई, उस महायज्ञ का यह पुरस्कार है।"

सेठ और सेठानी इस दिव्यवाणी को सुनकर कृतकृत्य हुए और वहीं धरती पर माथा टेक कर उन दोनों ने भगवान के चरणों में प्रणाम किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १७ :

अपनी-अपनी चोट

दिवाली से कोई तीन-चार दिन बाद की बात है। नीलमणि, ज्योति और उनके दोनों बच्चे घूमने के लिए घर से निकले तो ज्योति ने कहा, "क्योंजी, अनीता और अमलेन्दु के लिए कपड़े लेने हैं। चलो, चाँदनी चौक ही चले चलें।"

घूमना तो था ही, फिर क्या चाँदनी चौक और क्या कोई और दूसरा स्थान! उन्होंने फैज बाजार से ताँगा किया और चारों जने उसमें बैठ कर चल दिए। नीलमणि थोड़ा भावुक है। बाहर जो उसकी आँखों के सामने आता है, उसके प्रभाव से उसका दिल कम ही अछूता रह पाता है। इधर-उधर शरणार्थियों की भीड़ और फुटपाथ पर बिछी छोटी-मोटी दुकानें देख कर उसका मन दौड़ा तो पहुँचा देश के विभाजन और तज्जन्य स्थिति पर। उसका जी थोड़ा गिर आया। बोला, "ज्योति, देखती हो, देश के बँटवारे ने कैसा गजब ढाया है।"

ज्योति ने कहा, "हाँजी, लाखों बेघरबार हो गए। उनका सब कुछ छिन गया और यहाँ जो आए, उनका कैसा हाल-बेहाल हो रहा है। सच पूछो तो आजादी की असली कीमत इन्हें ही देनी पड़ी है।"

नीलमणि ने पत्नी की बात ध्यान से सुनी और कुछ बोला नहीं। उसके चेहरे की ओर देखता रहा। उसकी विचार-धारा सहधर्मिणी के चेहरे से कहीं दूर इतिहास के उस दुर्भाग्य-पूर्ण पृष्ठ पर जा रुकी, जहाँ एक दिन एक काली रेखा ने उसके प्यारे भारत की शस्य श्यामला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भूमि को खण्डित कर दिया था। रेखा उसने देखी और वह काँप उठा। साथ ही उसके मुंह से एक आह निकली––अभागा भारत !

वह कुछ और सोचता कि इतने में अनीता बोल पड़ी, "बाबूजी, फ्राक के लिए मैं बहुत से कपड़े लूंगी और रसगुल्ले खाऊँगी।"

अपनी जीजी के स्वर में स्वर मिलाते हुए अमलेन्दुबाबू ने कहा, "बाबूजी, मैं बुशशर्ट बनवाऊँगा और इतने रसगुल्ले खाऊँगा, ढेर सारे।"

नीलमणि की कल्पना रुक गई। रुक क्या गई मानों किसी ने उसे खींच लिया। दोनों बच्चों की ओर देख कर बोला––"ठीक है जी, तुम जो कहोगे, वही दिलवायेंगे।"

कहने को इतना कह तो गया; पर मन उसका वहाँ नहीं था।

एडवर्ड पार्क पार हुआ और जब परेड का मैदान और पीर की मजार आई तो नीलमणि की कल्पना को चौकड़ी भरने के लिए फिर कुछ सामग्री मिल गई। वहाँ कुछ मुसलमान भाई बैठे थे। उन्हें देख कर वह बोला, "ज्योति, अच्छा हुआ कि गाँधीजी दिल्ली में आ गए, नहीं तो क्या ये लोग यहाँ यों बैठे दिखाई देते ! भगवान जानें, क्या होता।"

ताँगेवाले ने अपनी देह जरा टेढ़ी कर के घोड़े के पटे पर धीरे से एक चाबुक जमाया और ज्योति कुछ कहे कि उसके पहले ही बोल उठा, "होता क्या जी ! ठीक ही होता ? आप क्या जानें। हमसे पूछो कि हम पर क्या बीती है और बीत रही है ?"

यह सब उसने अंग्रेजी में कहा तो अनायास नीलमणि और ज्योति का ध्यान उधर चला गया। उन्होंने देखा कि ताँगेवाले के चेहरे पर कुछ है जो साधारण नहीं है और किंचित् रोष के कारण उसका चेहरा थोड़ा खिंच आया है। दोनों ने देखा, पर कोई बात उनके मुंह से नहीं निकली। चुप ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ताँगेवाले ने अपने स्वर को थोड़ा नीचे लाकर कहा, "अपना दर्द बीवीजी, कहा नहीं जाता। आप सुनोगी तो रोंगटे खड़े हो जायंगे।"

"ठीक है भाई," सहानुभूति के साथ नीलमणि बोला, "पर मैं पूछता हूँ, चोट किसके नहीं लगी? इस बटवारे ने पंजाब या बंगाल की ही नहीं, सारे देश की कमर तोड़ डाली है।"

ताँगे वाला व्यंग से मुस्करा उठा। बोला, "अपनी चोट आदमी आप ही जानता है बाबू। मैं कब कहता हूँ कि मुझ अकेले पर ही बीती है। पर मेरे घाव की टीस मेरी ही देह में तो उठेगी...."

कहते-कहते उसका चेहरा तमतमा आया। अचानक उसका हाथ उठा और चार-पाँच चाबुक उसने घोड़े की पीठ पर जमा दिए। बोला, "मेरे पिता फ़ौज में बड़े अफसर थे, ऊँचे ओहदेदार। कई बरस हुए कि वे गुजर गए। अच्छा ही हुआ जो उन्होंने ये अभागे दिन नहीं देखे। भाई कप्तान थे। दंगे के दिनों में उन्होंने सैकड़ों की जान बचाई। आदमी-आदमी के बीच उन्होंने कभी भेद नहीं किया। सब को ईश्वर का बेटा और अपना भाई माना। लेकिन....लेकिन, दंगे में एक दिन उनकी भी जान चली गई। उनकी लड़कियों और स्त्री को दंगाइयों ने पकड़ लिया और खूब मारा। लड़कियों के साथ जो सलूक किया उसे भगवान ही जानता है।"

कहते-कहते उसके मुंह से एक लम्बी साँस निकली और वह चुप हो गया। उसे चुप देख कर ज्योति ने पूछा, "उनके साथ क्या हुआ, भाई ?"

"हुआ क्या, बीवीजी, कहते खून खौलता है। कमीनों ने उनके हाथ-पैर काट डाले। एक आठ की है, दूसरी बारह की। कम्बख्तों को जरा भी रहम नहीं आया। जब देखता हूँ कि जिन्होंने ऐसी हरकत की, उनकी बहन-बेटियों के साथ भी वैसी ही हरकतें हुईं तो मेरा दिल बल्लियों उछलने लगता है। आखिर जो जैसा बोता है, वैसा ही तो फल पाता है। जालिम कहीं के! बेहया, पाजी!"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नीलमणि को जैसे किसी ने झकझोर डाला हो, बोला, "ऐसी बात मुँह से न निकालो। भगवान सबको देखता है। जो दूसरों को सताता है, वह बुरा करता है और अपने किए की सजा पाता है। बदले का और बैर का पार नहीं। बैर से बैर कभी दबा है जो अब दबेगा! हर इन्सान की चोट हमें अपनी माननी चाहिए।"

"ठीक कहते हो बाबू। कहने में यह बात बड़ी भली लगती है, लेकिन करने में उतनी आसान है नहीं।" ताँगेवालेने कहा, "मैं बहुतेरा चाहता हूँ कि जो गुजर गई, उसे भूल जाऊँ। पर भूल नहीं पाता। भरा-पूरा घर था। देखते-देखते उजड़ गया। सबकुछ लुट गया। जैसे-तैसे जान बचा कर यहाँ आए। सोचा कि इतनी बड़ी नगरी में कहीं ठौर-ठिकाना मिल जायगा तो कुछ दिन में जिन्दगी फिर अपने पुराने ढर्रे पर चल पड़ेगी और दिल की आग पर राख पड़ जायगी, वह दब जायगी; लेकिन यहाँ की हालत तो नरक से भी बदतर है। कई महीने तक मारा-मारा फिरा। जिस दफ्तर में गया वहीं टका-सा जवाब मिला कि जगह नहीं है। बाबू, मैं आपसे क्या कहूँ! तीन बरस जर्मनी में मैंने दुभाषिये का काम किया है। जर्मन, अंगरेजी, हिन्दुस्तानी, पंजाबी खूब बोल लेता हूँ। वहीं रहा आता तो चैन से दिन कट जाते; लेकिन होनी किसने देखी है। घर की मुहब्बत यहाँ खींच लाई। काबलियत की आजकल क्या कीमत है। नौकरी न मिली तो सोचा कि फौज में भरती हो जाऊँ। दफ्तर में गया तो अफसर ने कहा--सिपाही बनो। पचास-साठ रुपये में क्या गुजर होती! विधवा भावज है, दो भतीजे, मेरी घरवाली और दो बच्चे। जब कहीं ठिकाना न लगा तो बाबू, हार कर यह ताँगा किया..."

ताँगेवाले का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आँखें भर आईं। ताँगे की गति धीमी पड़ गई थी, पर उसके हाथ का चाबुक ज्यों-का-त्यों निश्चेष्ट पड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रहा। घोड़े को उसने टिकटिकाया तक नहीं। वह किसी दूसरे ही लोक में पहुँच गया था।

नीलमणि और ज्योति को लगा कि ताँगा रुक जाय तो वे दोनों उतर पड़ें। वे कभी ताँगेवाले की ओर देखते थे तो कभी घोड़े की ओर और कभी अपनी रफ्तार चलती दूर-दूर तक फैली दुनिया की ओर। सब अपने में मुंदे हैं। किसे अवकाश है कि दूसरे की सुने। और इस तरह दुनिया चली जा रही है अपना बोझ लिए। ताँगेवाला ठीक ही कहता है कि सबकी अपनी-अपनी चोट है, अपना-अपना दर्द है। इसी का नाम दुनिया है !

तूफान थमा तो ताँगेवाला बोला, "बाबू, मेरा धन्नू आपके इन छोटे-बाबू के ही बराबर है। बड़ा प्यारा है। पहले नौकरी से लौटा करता था तो उसके लिए कुछ-न-कुछ लेकर ही आता था, पर अब....अब...."

दो बूंदें उसकी आँखों से टपक पड़ीं।—"जिन्दगी में कब और कितनी बेबसी आदमी को महसूस करनी पड़ेगी, कौन जानता है। दिवाली के दिन इतना भी नहीं हुआ कि बच्चों को चार पैसे की मिठाई भी ले जाता। रीते हाथ घर पहुँचा तो धन्नू ने कहा—"बापा, तुम हमारे लिए मिठाई क्यों नहीं लाए, खिलौने क्यों नहीं लाए?" उसकी बात का मैं क्या जवाब देता? क्या उससे कहता कि किस्मत ने तेरे बाप को इस लायक नहीं छोड़ा कि वह कुछ लावे, और बेटा, हम अब मुहताज हैं?...नहीं, यह सब मैं नहीं कह सकता था, नहीं कह सका। धन्नू देर तक मेरा और अपनी माँ का मुंह देखता रहा।..."

नीलमणि ने देखा कि थोड़ा आड़ में मुंह किये ज्योति साड़ी के किनारे से अपनी आँखें पोंछ रही है। तब उसने भी रूमाल से अपनी आँखें साफ कीं और दो कदम ताँगा और बढ़ा होगा कि उसने कहा, "बस, यहीं रोक दो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ताँगेवाले ने ताँगा रोक दिया। पैसे चुकाते हुए नीलमणि न एक रुपया और उसके हाथ पर रख कर रुंधे कण्ठ से कहा, "अपने धन्नू के लिए इसकी मिठाई ले जाना। वह हमारा ही बालक है।"

ताँगेवाले ने बहुतेरा इन्कार किया, पर नीलमणि और ज्योति वहाँ रुके नहीं। बच्चों की बाँह पकड़ कर चाँदनी चौक की भीड़ में समा गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १८ :

बंदी-छोड़-दाता

रामदास मानों सचमुच ही राम के दास थे। ईश्वर में उनकी इतनी गहरी निष्ठा थी कि भारी-से-भारी संकट उसी के सहारे, बिना किसी शोक-संताप के, दृढ़तापूर्वक सहन कर लेते थे। इसी से इस बार जब उन पर विपत्ति का पहाड़-सा टूट पड़ा तो भी उन्होंने धीरज नहीं खोया। हँस कर बोले--"माँ, परमपिता के चरणों में हमारा विश्वास अटल रहे। ये काली घटाएँ कितनी देर की हैं!"

और अगले दिन घर-गिरस्ती का जरूरी सामान ले माँ और दोनों विधवा बहनों के साथ अपने पूर्वजों की उस पुण्य नगरी को अन्तिम प्रणाम कर वह इंदौर चले आए और एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रहने लगे। उखड़ी गृहस्थी जमने में देर तो लगती ही है। थोड़ी-बहुत कठिनाइयों के बाद उनका काम चलने लगा।

रामदास के पूर्वज कई पीढ़ियों से पूना में रहते आए थे। वे कब और कहाँ से आए, इस बात को अब कोई नहीं जानता था, पर इतनी बात लोग अब भी कहते थे कि जिस मुहल्ले में आकर वे बसे, थोड़े दिनों में ही अवस्थी-घराने का नाम उस मुहल्ले में ही नहीं, आस-पास के मुहल्लों में भी सुनाई देने लगा। इतने सेवा-भावी और उदार ये लोग थे। रामदास के बाबा के पास काफी धन था, जिससे साहूकारी करते थे। ईमानदार और सच्चे इतने कि हजारों छोड़ दें, पर बेईमानी की कौड़ी भी लेना जिन्हें हराम हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बाबा की मृत्यु हो जाने पर साहूकारी का धंधा रामदास के पिता ने भी चलाया; लेकिन वे अपने पिता की भाँति व्यवहार-कुशल न थे और पैसा पानी की भाँति बहाते थे। अपनी बरबादी उन्होंने स्वयं ही आमंत्रित की। जितना धन था, सब स्वाहा हो गया, साहूकारी डूब गई और जब उनका स्वर्गवास हुआ तो पैतृक सम्पत्ति के नाम पर वह अपने एकमात्र पुत्र के लिए मुफलिसी छोड़ गए। फिर भी मरते समय उन्हें किसी प्रकार का असंतोष नहीं था। वह जानते थे कि रामदास वकालत पास कर चुका है और घर की गाड़ी खींच ही ले जायगा। उनका मन यह सोचकर भले ही संतुष्ट हो गया हो, लेकिन वास्तव में बात उतनी सरल नहीं थी। अमीरी के बाद जब गरीबी आती है तो आदमी स्वयं अपने को इतना तिरस्कृत अनुभव करता है कि समाज के साथ मिलकर चलना उसके लिए कठिन हो जाता है। रामदास जैसे साधु प्रकृति के व्यक्ति को वह तिरस्कार चाहे न भी छू पाए, पर उनकी वृद्धा माँ और विधवा बहनों के लिए यह असंभव था कि जिस जगह उन्होंने वैभव के दिन देखे थे, वहाँ गरीबी की जिन्दगी व्यतीत करें। इसलिए एक रोज माँ ने रामदास से कहा—"बेटा, यहाँ से चलो।"

जिस घर में बरसों से वे और उनके पुरखा रहते आए थे, उससे मोह हो जाना स्वाभाविक ही था। रामदास ने उन्हें ढांढ़स बंधाया। बोले—"घबराती क्यों हो, माँ? ईश्वर सब की सुनते हैं तो हमारी क्यों न सुनेंगे!"

इसके दो-तीन दिन बाद उन्होंने सामान बांधा और इन्दौर चले आए। स्थान-परिवर्तन के साथ ही रामदास का भाग्य भी मानों पलट गया। कुछ दिन बाद ही उन्हें राज्य में मजिस्ट्रेटी मिल गई।

रामदास की श्रद्धा ईश्वर में दिनोंदिन बढ़ती ही गई। अदालत के काम के बाद जो कुछ समय बचता, उसे वह भगवत्-चिंतन में बिताते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साधु-संतों के चरित और महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ते और सोचते कि दुनिया के दुख का क्या कारण है और वह कैसे दूर हो सकता है ? संतों ने उस दिशा में क्या किया और महापुरुषों ने दुनिया को कैसे बदला ? किसी एकान्त स्थान में बैठ कर घंटों वह इस समस्या पर विचार करते और अन्त में पाते कि पैसा ही दुख की जड़ है। उन्हें यह भी लगता कि लोगों में अब स्वार्थ-वृत्ति अधिक पैदा हो गई है। वे अपना लाभ चाहते हैं, चाहे उससे दूसरों की हानि ही क्यों न हो। यह स्थिति तभी बदल सकती है जब लोग पैसे का मोह छोड़ दें और अपने लिए न जीकर दूसरों के लिए जिएं।

इन सब बातों की तह में रामदास जितने घुसते गए, उनका जीवन भी दिन-प्रतिदिन उतना ही बदलता गया। पैसा हाथ में आता कि घड़ी भर भी वह न टिकने देते। जो भी हाथ पसारता या जिसे भी वह कष्ट में देखते उसी को दे डालते।

उनके विचार आध्यात्मिकता की ओर झुकने लगे तो इसका प्रभाव उनके फैसलों और मुकदमे की कार्रवाइयों पर भी पड़ने लगा। अधिकांश अभियुक्तों को वह बिना सजा दिए छोड़ देते। उनकी धारणा होने लगी थी कि जेलखाने अपराध की प्रवृत्ति को रोकते नहीं, उसे बढ़ावा देते हैं, पुष्ट करते हैं। कई बार तो ऐसा हुआ कि अभियुक्त ने खुली अदालत में अपना अपराध स्वीकार कर लिया, लेकिन रामदास ने कहा––"अरे भाई, यह ठीक है कि तुमने यह काम किया; लेकिन मैं देखता हूँ कि परि-स्थितियों से तुम इतने लाचार हो गए थे कि और कुछ कर ही नहीं सकते थे। तुम्हारी जगह मैं होता तो शायद वही करता जो तुमने किया। इससे मैं कहता हूँ कि तुम अपराधी नहीं हो; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अब वह परिस्थिति नहीं रही और आइंदा तुम ऐसा नहीं करोगे। क्यों, है न ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अभियुक्त सिर हिला कर कहता—"ठीक है, मालिक, अब हम आइंदा ऐसा नहीं करेंगे।"

रामदास तुरन्त उसे रिहा कर देते। वह देखते कि क्षमा का यह मार्ग दण्ड की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली और उत्तम है। अपने इस व्यवहार से रामदास चारों ओर इतने लोकप्रिय हो गए कि हर तरफ उनका नाम सुनाई देने लगा। चूंकि बंदियों को वह प्रायः छोड़ देते थे, इसलिए लोगों ने उनका नाम 'बंदी-छोड़-दाता' रख दिया। दूर-दूर तक इस उदार न्यायाधीश की ख्याति फैल गई।

इसी बीच एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि रामदास बड़े चक्कर में पड़ गए। तीन-चार दिन के लिए एक काम से वह बाहर चले गए थे। पीछे उनके नौकर गुलाब की नीयत डिग गई और वह बड़ी बहन के कुछ आभूषण लेकर चम्पत हो गया। घर में वही एक नौकर था और यद्यपि रामदास का उस पर पूर्ण विश्वास था, तथापि एक-दो बार के उसके व्यवहार से माँ और दोनों बेटियों को ऐसा लगा कि नीयत का वह बहुत साफ नहीं है। सो जब जेवर जाने का उन्हें पता चला और गुलाब भी काम पर नहीं आया तो उन्हें पक्का भरोसा हो गया कि चोरी उसी ने की है। उन्होंने पहले तो गुलाब को बुलाने आदमी भेजा; लेकिन जब उसने आने से इन्कार कर दिया तो उन्हें सन्देह की बिलकुल गुंजाइश न रही और उन्होंने पुलिस में रिपोर्ट कर दी। गुलाब का नाम भी लिखा दिया। मजिस्ट्रेट के घर का मामला था। इससे पुलिस ने तुरन्त कार्रवाई की। गुलाब को गिरफ्तार कर लिया और बड़ी होशियारी से उसके घर से माल बरामद कर लिया। इसी दरम्यान रामदास लौट आए। उन्हें जब तमाम किस्सा मालूम हुआ तो बड़े दुखित हुए 'कहा—"माँ, तुमने यह क्या कर डाला? गुलाब ने एक गलती की तो दूसरी तुमने क्यों कर डाली? आखिर माल लेकर वह जाता कहाँ? आकर मैं सब निकलवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेता। तुम नहीं जानती कि पुलिस लोगों को कितना हैरान करती है। पुलिस के हाथ पड़ कर बेचारे की जाने क्या दुर्दशा हुई होगी !"

माँ रामदास के स्वभाव को जानती थीं। बोलीं—"भैया, थोड़ी गलती तो जरूर हो गई; लेकिन गुलाब ने भी तो कैसा गजब कर डाला !"

"क्या गजब किया, माँ ?" रामदास ने तत्काल उत्तर दिया, "उसे चोरी करना हमने ही तो सिखाया। जो जरूरत से ज्यादा रखता है, वह मानों स्वयं ही दूसरों को आमंत्रण देता है कि आओ और ले जाओ। गुलाब रोज देखता था कि वह और उसके घर वाले तंगी में हैं और हमारे यहाँ जेवर रक्खे हैं। उसकी नीयत बिगड़ी तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं। खैर, तुम चिन्ता न करो। मैं सब ठीक कर दूंगा।"

अगले दिन गुलाब की पेशी रामदास की अदालत में हुई। गुलाब को हथकड़ी-बेड़ी में जकड़ा देख रामदास को बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने तुरन्त पुलिस को आज्ञा दी कि उसकी हथकड़ी-बेड़ी खोल दी जायं। मजिस्ट्रेट की आज्ञा का पुलिस को पालन करना पड़ा। फिर रामदास ने गुलाब से पूछा—"कहो, भाई गुलाब, क्या हुआ ?"

गुलाब की आँखें धरती पर लगी थीं। वह सहसा मुंह उठा कर स्वामी की ओर नहीं देख सका और न कोई शब्द ही उसके मुंह से निकला। अदालत में सन्नाटा था। रामदास ने थोड़ी देर रुक कर फिर कहा—"बोलते क्यों नहीं, गुलाब ? घबराओ नहीं और अपनी बात कह डालो।"

स्वामी के इस सदय और स्नेहपूर्ण व्यवहार से गुलाब मानों धरती में गड़ने लगा। स्वामी के साथ उसने विश्वासघात किया था। वह चाहता था कि इसका उसे कठोर दण्ड मिल जाय तो उसकी आत्मा संतुष्ट हो जाय। स्वामी फटकार कर कह दें कि "ओ हरामखोर, ओ नमकहराम !" तो संताप से भभकते उसके कलेजे पर शीतल जल की कुछ बूंदें पड़ जायं। स्वामी के मीठे शब्द उसके हृदय को बेधे डाल रहे थे। कुछ कहने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को उसने सिर उठाया कि फिर उसकी आँखें नीची हो गईं। रामदास उसके भावों को ताड़ गए। बोले—"गुलाब, सच-सच बात कह क्यों नहीं देते? देर करने से क्या फायदा? बोलो!"

लोगों ने देखा कि गुलाब की आँखों में पानी भर आया है।

इसके बाद पुलिस ने अपना 'केस' अदालत को समझाते हुए कहा कि गुलाब चोर है। उसने श्रीमती धर्मकुमारी अवस्थी का माल उड़ा कर अपने मकान के भीतर रख छोड़ा था, जहाँ से वह बरामद हुआ। गुलाब खुद कहता है कि उसने चोरी की है और इसकी उसे सजा मिलनी चाहिए।

रामदास चुपचाप पुलिस की बातें सुनते रहे, पर उनका ध्यान और ही कहीं था। वह दूसरी ही बात सोच रहे थे। पुलिस ने जब अपना बयान खत्म किया तो रामदास ने पूछा—"तुम्हें और तो कुछ नहीं कहना है?"

थानेदार ने कहा—"नहीं, हुजूर।"

तब रामदास गुलाब की ओर मुखातिब होकर बोले—"अब तुम कुछ कहोगे?"

गुलाब ने सिर उठाया और हाथ जोड़ कर बोला—"न्यायदाता, मैं क्या कहूँ? मैंने चोरी की है। उसकी मुझे सजा मिलनी चाहिए।" कह कर गुलाब चुप हो गया और इसके बाद उस दिन की कार्यवाही समाप्त हो गई।

अगले दिन अदालत में अभियुक्त, पुलिस और दर्शकों के सामने रामदास ने फैसला सुनाया, वह ऐसा था कि स्वप्न में भी कोई उसकी कल्पना नहीं कर सकता था। फैसले में उन्होंने कहा—"गुलाब निर्दोष है। बाहर जाने से कुछ ही देर पहले मैंने स्वयं वे जेवर गुलाब को दिए थे। घरवालों से कहने का मुझे ध्यान नहीं रहा और मेरे चले जाने पर जब माँ और बहन को पता चला कि जेवर नहीं हैं तो उन्होंने समझा कि गुलाब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही उन्हें चुरा ले गया है। बुलाने पर उसके न आने का कारण यह था कि उसकी तबीयत ठीक नहीं थी। मुझे अत्यन्त खेद है कि मेरे कारण इस प्रकार की दुर्घटना हुई। मैं गुलाब से क्षमा मांगता हूँ और उसे मुक्त करता हूँ।"

× × ×

रामदास आज इस संसार में नहीं हैं; पर अदालत की या पुलिस की जब कहीं जरा भी सख्ती होती है तो इंदौर के निवासियों को अपने 'बंदी-छोड़-दाता' का स्मरण हो आता है और वे कह उठते हैं कि उनके जैसा उदार न्यायाधीश न कभी हुआ है, न होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: १६ :

रेल में

राम-राम ! ललितपुर से चले अभी आधा घंटा भी नहीं हुआ कि जी घबराने लगा है। डब्बा खचाखच भरा है। मुसाफिरों में सभी तरह के लोग हैं––देहाती और शहरी, गरीब और अमीर। पाखाने के निकट चिथड़ों में तन को लपेटे एक ऐसा नर-कंकाल बैठा है, जिसे देखकर दया आती है। और वह बैठा है जैसे जग से विरक्त। खांसी आती है तो खांसते-खांसते ढेर सारा कफ अपने पास ही थूक लेता है और लोग उसकी ओर देखकर तिरस्कार से मुंह फेर लेते हैं। ऐसे जीवन से मृत्यु भली। कैसा वीभत्स दृश्य है !

रेल की यात्रा मेरे लिए सदैव दुखदाई होती है। हजार प्रयत्न करने पर भी न मेरी आंख लगती है, न स्वस्थ चित्त से कुछ सोच ही पाता हूं। रेल की गति से होड़ लगाकर मेरा मन दौड़ता है और टिकने को उसे कोई आधार नहीं मिलता। वह कभी दूरस्थ क्षितिज तक दौड़ जाता है, कभी अनन्त आकाश तक और फिर पथ-भूले पंछी की भांति भटकता और परेशान होता है।

ओह ! बड़े जोर का जाड़ा है ! तीखी हवा आ रही थी सो काठ की खिड़की मैंने बन्द कर दी है। अब मुझे बाह्य जगत का कुछ भी नहीं दीखता। चिलम और बीड़ी-सिगरेट के धुएं से सारा डब्बा भर गया है और उसकी गन्ध से सिर फटा जा रहा है। मैं क्या करूँ ? ऐसे में कुछ पढ़ना-लिखना भी तो संभव नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हम चार जने हैं। दादाजी विस्तर पर पैर पसारे लेटे हैं। सो चाहे न रहे हों, पर आँखें मुंदी हैं। काका कुहनी के बल अध-लेटे दायें हाथ की उंगलियों से माथा दाब रहे हैं। रात को कम सोने के कारण उनके सिर में दर्द है और बुद्धिप्रकाश बैठे-बैठे न जाने किस लोक में विचरण कर रहे हैं। चारों अपने-अपने में व्यस्त हैं और चुप हैं। एक-दूसरे के लिए मानों रत्ती भर भी खाली नहीं।

× × ×

"आप...पत्र में काम करते हैं ?" पास बैठे हुए युवक ने अत्यंत संकोच और विनम्रता से पूछा।

मैंने कहा, "जीहां, कहिए।"

युवक को जैसे इस परिचय से आश्चर्य और हर्ष हुआ। एक हलकी मुस्कराहट के साथ दोनों हाथों को उठाकर उसने कहा--"नमस्कार।"

प्रत्युत्तर में मैंने भी "नमस्कार" कह दिया।

थोड़ी देर मेरी ओर देखकर वह बोला, "आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। कहां जा रहे हैं ?"

"अबोहर।"

"कब लौटिएगा ?"

"ठीक नहीं कह सकता। एक-एक दिन झांसी, ग्वालियर, आगरा ठहरना है और दो दिन दिल्ली। दस-बारह दिन तो लग ही जायंगे।"

क्षणभर के लिए हम दोनों चुप हो गए। मैं उसके दुबले-पतले शरीर की ओर देखने लगा। पांचेक मिनट इस तरह बीते होंगे कि वह बोला--"आप मुझे नहीं जानते। गोवर्द्धन मेरा नाम है। ललितपुर में चुंगी में क्लर्क हूं। पत्नी की बीमारी की चिट्ठी आई है सो तालबेहट जा रहा हूं। पता नहीं कि उसका मुंह देखने को मिलेगा या नहीं।" और कहते-कहते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसने एक लम्बी सांस ली। उसकी घबराहट को देखकर सान्त्वना देते हुए मैंने कहा, "भगवान करेगा तो अच्छी हो जायंगी। आप अधीर न हों।"

रुंधे गले से उसने कहा, "अच्छी ? क्या अच्छी होगी। टी० बी० के खूनी पंजे से कम ही बच पाते हैं। हां...."

सहसा वह रुक गया। मैंने कहा, "कहिए-कहिए।"

बोला, "क्या कहूं, साहब ? हम गरीब आदमी तो मरना ही जानते हैं, जीना नहीं। आठ रुपये में क्या तो अपना पेट भरूं, क्या घर वालों को दूं और क्या उसका इलाज कराऊं ? पैसा होता तो क्या उसे यों मरने देता ? पहाड़ ले जाता। दवा-दारू कराता। लेकिन वह सब तो मेरे लिए सपना है। अपनी बेबसी पर रो ही सकता हूं।"

इतना कहते-कहते वह उत्तेजित हो उठा—"सब भाग्य की बात है ! हमारे शहर का बड़ा साहब तीन-चार रुपये रोज की दारू चढ़ा जाता है। रुपये रोज की सिगरेट। कुत्ते के साबुन-तेल का खर्च ही दस-बारह रुपये महीने का है। और एक ओर हम हैं कि...."

उसकी आंखें चमक उठीं। "लेकिन, मैं कहता हूं भाई साहब, गरीबों की आहें योंही नहीं जायेंगी। दिन सदा एक से न किसी के रहे हैं, न रहेंगे। दुनिया भी एक-न-एक दिन बदलेगी और आज जो गरीबों के पसीने की कमाई को पानी की तरह बहाते हैं, वे कौड़ी-कौड़ी को मुहताज होंगे।"

मैंने कहा, "अभी तो उस दिन के आने में बड़ी देर दीखती है।"

"देर है तो क्या, वह दिन आयगा जरूर जब अमीरों की अमीरी उनके लिए अभिशाप बनेगी।"

गोवर्द्धन और कुछ कहता कि तालबेहट आगया। गाड़ी रुकते ही वह उठकर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर बोला, "आवेश में कुछ ऐसी-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैसी बात मुंह से निकल गई हो तो क्षमा कीजिएगा। गरीबी ने दिल पत्थर का कर दिया है। देखिए, कभी मौका लगा तो आपके यहां आऊंगा।"

रेल बढ़ी चली जा रही है और मेरा मन भी उसी तेजी से उड़ रहा है—अमीरी एक दिन अमीरों के लिए अभिशाप बनेगी और. . . .गरीब मरना जानते हैं, जीना नहीं। . . . .कुत्ते साबुन से स्नान करते हैं और आदमी भूख से प्राण देते हैं. . .ओह !

× × ×

"हाय राम ! मरा रे भगवान !"

मैंने नीचे को निगाह करके देखा। सीटों के बीच एक स्थूलकाय पुरुष लेटा कराह रहा था। "क्या है भाई ?" अन्यमनस्क भाव से मैंने पूछा।

"पेट के दर्द के मारे मरा जा रहा हूं बाबू !. . .अरे मरा ! हाय राम !" माथे पर सलवट डालकर दुःख के स्वर में उसने कहा।

"जा कहां रहे हो ?"—मैंने फिर प्रश्न किया।

"कहां जाऊं ? भाड़-चूल्हे में कहीं भी तो जगह नहीं है ! भगवान उठाले, बस यही अरदास है।" इतना कहकर उसने दोनों हाथ ऊपर को उठा दिए।

मैंने कहा, "क्यों, क्या हुआ ?"

बोला, "बाबू, पैसा बड़ी गन्दी चीज है। मेरा बस चले तो दुनिया-भर की धन-दौलत में आग लगा दूं।"

दर्द के मारे वह फिर चिल्लाने लगा। पास जाकर मैंने कहा, "देखूं।" उसने कमीज ऊपर को हटाकर पेट खोल दिया। हाथ से दबाकर मैंने देखा। पत्थर की तरह कड़ा हो रहा था। मैंने पूछा, "दर्द कब से हो रहा है ?"

"यही सवेरे से। ऐसी टीस उठती है कि जान ही निकली जा रही है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"तुम्हारे साथ और कोई नहीं है ?" उसने एक लंबी सांस ली। बोला, "साथ ? साथ ही को कोई होता तो घर से निकलने की नौबत ही क्यों आती ? अब तो बस कैसे ही हरिद्वार पहुंचना है। गंगा-मैया के तटपर भगवान के नाम की माला जपूंगा और बाकी की जिन्दगानी राम के चरणों में ही बीतेगी। उस दुष्ट का अब मुंह भी नहीं देखूंगा।"

मैंने कहा, "भगवान की शरण में जा रहे हो तो मन को साफ करके जाओ। विकार बना रहा तो गंगा के तट पर भी तुम्हें शांति न मिलेगी। समझे भैया !"

"हां, सब समझता हूं। भगवान न्याय करेंगे तो जरूर उसे नरक भेजेंगे। मैं दिन-रात भगवान से यहीं विनय करूंगा।"

मैंने कहा, "क्या किसी ने तुम्हारा रुपया मार लिया या जमीदार ने तुम्हें सताया है ?"

बोला, "नहीं बाबू, जमींदार ने नहीं सताया। मेरे भाग्य ने ही सताया है। मैं क्या जानता था कि बाद में ऐसा होगा ? जानता तो होशियारी से न चलता ? जो कुछ कमाया, सब उसी के हाथ पर रक्खा। सोचता था कि जब हाथ-पैर थक जायंगे तो सहारा देगा। पेड़ लगाते भी तो इसलिए ही हैं न कि वे छांह देंगे ! हाय, मेरा जैसा कपूत बेटा भगवान किसी को न दें। पैसा कमाकर देता रहा तबतक तो ठीक रहा। जहां देह थकी कि धक्का देकर घर से निकाल दिया ! घरवाली होती तो क्यों यह दिन देखना पड़ता ? हाय, बहू भी मुझे सुनाते हुए बोली कि निठल्ले आदमियों का इस घर में काम नहीं है।"

मैंने देखा उस आदमी के पेट में दर्द तो है ही, लेकिन उससे भी कष्ट-दायक पीड़ा उसके कलेजे में है। बेटे की कृतघ्नता ! मैंने कहा, "हरि-द्वार जाकर क्या करोगे ? घर लौट जाओ और बेटे को समझा-बुझा दो। थोड़ी-सी उमर बची है। भटककर क्या करोगे ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बोला, "अब नहीं उस घर में पैर रखने का ! जहां से दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया गया, वहां अब घड़ीभर भी न रह सकूंगा। अब तो गंगामैया का किनारा होगा और भगवान की माला। किसी दिन जी में आया तो .... गंगा-मैया तार देगी।"

मैं उसके मुंह की ओर देखता रहा और दर्द से वह चिल्लाने लगा।

हम लोगों को झांसी उतरना है। वहां एक दिन रुककर आगे बढ़ेंगे और मैं चाहता हूं कि झांसी आजाय तो चैन की सांस लूं। गरीबी बुरी है। पैसा बुरा है। औलाद बुरी है। तब दुनिया में अच्छा है क्या ? और वह आदमी पेट और कलेजे के दर्द से चिल्ला रहा है––हाय राम !

झांसी आने में अभी थोड़ी देर है।

रात हो गई है और बाहर सब सुनसान है। अंधेरे में कुछ भी तो नहीं दीखता। सब शून्य है। अन्धकार के आवरण में मानों दुनिया का अस्तित्व ही विलीन हो गया है। बिजली की दो बत्तियों से समूचा डब्बा जगमगा रहा है और बाहर का अन्धकार इस प्रकाश के कारण और भी गाढ़ा हो गया है। उसे पार कर मैं उस अवस्था को देखना चाहता हूं जहां अमीरी अमीर के लिए अभिशाप बन गई है। उजाले में तो कुछ भी नहीं दीखता। उसमें तो जो फीका है वह भी चमकता है और चमकते का तो कहना ही क्या !

रेल तेजी से अन्धकार को चीरती अपने पथ पर अग्रसर हो रही है और अब मैं फिर अपने को समेटकर डब्बे की दुनिया में ले आया हूं।

× × ×

एक बन्दी पाखाने की ओर जा रहा है। उसके हाथ कसे हैं और पैरों में बेड़ियां पड़ी हैं। लाल साफ़े और खाकी वर्दी में दो सिपाही उसके साथ जा रहे हैं। बन्दी पाखाने का दरवाजा खोलकर अन्दर चला गया है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और सिपाही बाहर खड़े हैं। उन्हें अंदेशा है कि कहीं वह चलती गाड़ी से कूद न जाय। पता नहीं बेचारा बन्दी किस अपराध में इन लोगों के हाथ पड़ा है! वह अभी युवक है। मुश्किल से पच्चीस बरस का होगा। बदन गठा है और नेत्रों में एक प्रकार की चमक है।

थोड़ी देर में वह पाखाने से निकला और सिपाहियों के साथ अपनी जगह पर पूर्ववत् आ बैठा।

"कहो भाई, किस जुर्म में इसे पकड़ा है ?" उत्सुकता-वश मैंने एक सिपाही से पूछा।

सिपाहियों ने संभवतः अनुभव किया कि अभियुक्त के प्रति मेरे मन में सहानुभूति है और वे दोनों मेरे प्रश्न पर मुस्करा उठे। बोले, "इसकी शकल बहुत धोखा देती है। जरा देखो तो, कैसा सीधा-सादा लगता है; पर है यह असल जल्लाद। रहम का तो इसके दिल में नाम तक नहीं है।"

मेरी उत्सुकता और बढ़ी। पूछा, "आखिर इसने किया क्या ?"

सिपाही बोला, "बताऊं कि इसने क्या किया ? आप यकीन नहीं कर सकोगे कि यह जरासा छोकरा इतना जालिम हो सकता है। इसने बाईस खून किए हैं—बाईस! बंबई में चौपाटी पर बैठा रहता था। दांव लगा कि माल छीना और आदमी को समुन्दर के हवाले कर दिया। बंबई जैसे शहर में एक आदमी का यों मर जाना किसे मालूम होता है ? वह तो उस दिन अच्छा हुआ कि एक पुलिस का आदमी ठीक उसी समय आ पहुंचा, जबकि आप माल-मता छीन-छानकर एक दुबले-पतले आदमी को समुन्दर में पटकने की कोशिश कर रहे थे। बड़ी मुश्किल से यह पकड़ा गया। बच्चू की जब खूब अच्छी तरह खबर ली गई तब आपने कबूल किया कि इससे पहले बाईस आदमियों को मौत के घाट उतार चुका है। कई तो उनमें बालक थे, जिनके जेवरों के खातिर इसने प्राण लिए। अव्वल दर्जे का सट्टेबाज है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैंने युवक के चेहरे की ओर एक बार फिर ध्यान से देखा। दया का दान वह कभी नहीं दे सका, पर मानों उसकी आंखें आज स्वयं दया की याचना कर रही थीं, यद्यपि वह जानता था कि आजकल के इस विश्व में, जहाँ प्राणों का सौदा प्राणों के साथ किया जाता है, दया उसे मिलने की नहीं। अदालत फैसला देगी और वह फांसी के तख्ते पर लटक जायगा। कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद की तलवार की मूंठ पर ये शब्द खुदे थे—"जो तेरे साथ बेइंसाफी करे, उसे तू माफ कर दे।" पर आज की दुनिया इतनी क्षमाशील नहीं कि बाईस आदमियों का खून करने वाले कातिल से कह दे कि जाओ, तुम्हें माफ किया। उसकी दृष्टि में युवक इस उत्तम क्षमा का अधिकारी नहीं। अधिकारी है तो बस फांसी का। इस बात को शायद वह युवक भी अच्छी तरह जानता है और उसके लिए तैयार है।

× × ×

गाड़ी की चाल धीमी पड़ने लगी है। झांसी आगई और हमें उतरना है। मेरे मन पर किसी ने एक भारी पत्थर रख दिया है।

गाड़ी रुक गई है और हम लोग उतर रहे हैं। ओ रेल की दुनिया, मैं तुझे प्रणाम करता हूं। कल फिर मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: २० :

काठ की हांडी

"हर-हर महादेव ! हर-हर महादेव !"

लाला कृपानारायण के घर की छत से उठकर रात्रि की निस्तब्धता का चीरता उक्त नाद मुहल्ले के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया। साथ ही दूसरी, फिर तीसरी और चौथी, इस प्रकार एक-एक करके अधिकांश छतों से एक साथ अनेक कण्ठ मुखरित हो उठे—"हर हर महादेव ! सतश्री अकाल !"

रात गाढ़ी हो गई थी और आसमान में काले-काले बादल छाए थे, मानों प्रकृति ने मानव के दुष्कर्मों से संतप्त होकर दुनिया पर काला आवरण डाल दिया हो। नगर के अन्य भागों से चलती गोलियों की ध्वनि स्पष्ट सुनाई दे रही थी। उस सुनसान वातावरण में दूर की गोली भी बाजू ही में चल रही मालूम होती थी।

सभी अपनी-अपनी छतों पर मुस्तैदी से डटे थे। जरा-सा खटका हुआ नहीं कि सब चौकन्ने हो गए। उस आतंक-पूर्ण वातावरण में छोटे-बड़े सबको ऐसा लगता था कि अब उसकी जान पर बीतने वाली है। सभी को पक्का भरोसा था कि रात को मुहल्ले पर आक्रमण हुए बिना न रहेगा। बात यों हुई कि शाम को एक आदमी सेठ कृपानारायण के पास आया और चुपके-से उनके कान में बोला, "लालाजी, आज होशियार रहना। मुझे पक्की खबर मिली है कि आज इस मुहल्ले की बारी है। जरूर हमला होगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इतना कहकर उसने थोड़ी देर लालाजी के मुंह की ओर भावभरी मुद्रा से देखा। फिर बोला, "मैं आपसे कहता हूं लालाजी, उन लोगों की बड़ी-बड़ी तैयारियां हैं। एक-से-एक बढ़कर बन्दूकें, स्टैनगनें, बम के गोले और ऐसे पैने छुरे कि एक हाथ और दो टुकड़े। सेठजी, बड़ी सावधानी की जरूरत है।"

सेठजी के पैरों तले जमीन खिसकने लगी, पर अपनी घबराहट को छिपाते हुए उन्होंने पूछा, "क्यों भैया, वे लोग किधर से आ सकते हैं ? पीछे मस्जिद की तरफ से आने की आशंका तो नहीं है ?"

"आशंका !" युवक ने किंचित् कठोर होकर कहा, "आप अब भी आशंका की ही बात करते हैं ! मैं कहता हूं आज रात को हमला होना तय है, बिल्कुल तय ! आप हैं किस हवा में लालाजी ?"

लालाजी का चेहरा फक पड़ गया। उनके पिछवाड़े मस्जिद थी और संवाददाता इतने आश्वस्त ढंग से कह रहा था, मानों वही हमला करने वाला हो ! उसे थोड़ा शांत-सा करते हुए लालाजी बोले, "नहीं-नहीं, भैया, मेरी बात समझे नहीं। तुम ठीक कहते हो। सारा शहर मुसीबत में है तो यह एक-इकल्ला मुहल्ला ही कैसे बचा रह सकता है ! एक-न-एक दिन इसका भी नम्बर आना ही था। (रिरिया कर) लेकिन भैया, मैं यह जानना चाहता था कि इधर पिछवाड़े से तो कोई डर नहीं है ?"

युवक ने तत्काल उत्तर दिया, "जनाब, वही तो एक रास्ता है। मैं कहता हूं, सामने से आकर क्या उन्हें मरना है ?"

"हमें अब क्या करना चाहिए ?" लालाजी ने काँपते हुए पूछा।

"मैं क्या बताऊं ?" युवक ने जवाब दिया, "आप से जो कुछ बन सके, कीजिए। वक्त से पहले खबर देना मेरा काम था। वह मैंने कर दिया। अब आप जानो, आप का काम जाने। अच्छा, मैं चला।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहकर युवक उठ खड़ा होने को हुआ।

"ऐसे आड़े वक्त में तुम लोग कुछ नहीं करोगे, भैया ?" लालाजी ने पूछा।

"हम लोग ! क्यों नहीं। जो बनेगा, करेंगे ही। लेकिन..."

युवक बीच ही में रुक गया और एक गहरी निगाह उसने कमरे में चारों ओर फेंकी, जैसे उसे कोई बहुत ही निजी बात कहनी हो और कहने से पहले जान लेना चाहता हो कि उन दोनों के अलावा वहाँ और कोई नहीं है। लालाजी उसके भावों को ताड़ गए और उसकी बांह में हाथ डाल कर भीतर के कमरे में ले गए। वहां जाकर दोनों के बीच क्या-क्या बातें हुई, यह कोई नहीं जानता; लेकिन युवक जब बाहर आया तो उसके चेहरे पर मुस्कराहट खेल रही थी और लालाजी भी अब उतने उदास नहीं दीखते थे।

युवक का जाना था कि लालाजी ने बात-की-बात में अड़ोस-पड़ोस के घरों के लोग इकट्ठे कर लिए और अपनी ओर से नमक-मिर्च मिलाकर आक्रमण की बात उन्हें सुनाई। युवक ने जितने विश्वास के साथ बात कही थी, उसके दूने-चौगुने विश्वास के साथ उन्होंने कही और फिर अन्त में बोले, "आज की रात बड़ी मुसीबत की है। पूरी-पूरी तैयारी करो। छतों पर ईंट-पत्थर चढ़ा दो और औरतों से कह दो कि हमलाइयों पर ईंट-पत्थरों की वर्षा करें। टबों में पानी भरवाकर उसमें मिर्च मिलवा दो और उस पानी को ऊपर से फेंकने को कह दो।"

और न जाने क्या-क्या बातें लालाजी ने कहीं और कड़ी चेतावनी देकर लोगों को विदा किया।

बात सेठ कृपानारायण के यहां से ही नहीं, तीन-चार और जगहों से भी उठी और धीरे-धीरे सारे मुहल्ले में फैल गई। हर घर में तैयारियां

९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होने लगीं। चिरकाल से कोठरियों के भीतर पड़ी लाठियां, चारपाइयों के सेरे-पाटी और लोहे की छड़ें निकाली गईं और घर-घर में व्यवस्था की जाने लगी कि बैरी का मुकाबिला कैसे किया जायगा। स्त्रियों, बच्चों और बुड्ढों को मकान के सबसे सुरक्षित भाग में रख दिया गया और आठ बजते-बजते पुरुष सिर पर कपड़ा बांध लाठी आदि से लैस होकर छतों पर चढ़ गए और उत्सुकतापूर्वक देखने लगे कि कब आक्रमण होता है।

ओह! कैसी भयंकर रात थी वह। मुश्किल से नौ बजे होंगे, पर आधी-रात का-सा सन्नाटा छा गया था! लोगों का कलेजा मुंह को आ रहा था। कौन जानता था कि अगले क्षण क्या होने वाला है। साढ़े नौ तक का समय शांतिपूर्वक बीत गया कि अचानक एक फ़ैर हुआ। ध्वनि से साफ जाहिर था कि पास की सड़क पर किसी ने गोली चलाई है। फ़ैर का होना था कि एक साथ कई छतें गूंज उठीं, "हर-हर महादेव!" "हर-हर महादेव!"

उसी के साथ किसी ने एक छत से कड़ककर कहा, "सावधान!"

लोगों को काटो तो खून नहीं। स्त्रियों और बच्चों के हृदय तेजी से धड़कने लगे।

इसके बाद तो इर्द-गिर्द से कई गोलियां एक साथ चलीं और फिर थोड़ी देर में पूर्ववत् सन्नाटा छा गया।

रात बढ़ती जाती थी और साथ ही लोगों का डर भी बढ़ता जा रहा था।

× × ×

एक तरफ यह सब हो रहा था, दूसरी तरफ उस मुहल्ले के एक मकान में कुछ लोग बैठे बातें कर रहे थे। मुहल्ले के आदमियों के आतंक से प्रकंपित कंठों से जब स्वर फूटता था तो इससे उन्हें हल्का-सा आनन्द प्राप्त होता था। स्वर थम जाता तो वे आपस में बातें करने लगते। उनमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से जिसे सबसे ज्यादा हंसी आ रही थी बोला, "कैसा मजा आ रहा है !"

सेठ कृपानारायण को सूचना देने वाले महाशय भी वहां मौजूद थे और उस मंडली के विनोद में रस के साथ भाग ले रहे थे। बोले, "अजी, जनाब, जब मैंने लालाजी से हमले की बात कही तो उनके होश फाख्ता हो गए। सेठ देखने में मोटा जरूर है, पर दिल का बड़ा कच्चा है।"

दूसरा बोला, "यही हालत राय की हुई। हमले की बात सुनी कि थर-थर कांपने लगा। लेकिन है बड़ा घाघ ! सौ देकर ही टाल दिया, पर मैंने भी हजार वसूल न किये तो मेरा नाम विश्वनाथ नहीं।"

"इससे तो लाला ही अच्छा निकला। अन्दर के कमरे में ले जा कर चुपचाप सौ-सौ के पांच नोट दे दिए और आंखों में आंसू भर कर बोला, "भैया, हमें बचाना तुम्हारे ही हाथ है। हमारी तो कोई बात नहीं, लेकिन तुम्हारी सेठानी इतनी कमजोर हो गई हैं कि आ पड़ने पर एक फर्लांग भी नहीं चल सकतीं।..."

"इस पर तुमने क्या कहा, आनन्द ?" विश्वनाथ ने मुस्कराते हुए पूछा।

"कहता क्या ! उन्हें ढांढस बंधाया और कहा कि अब आप बिल्कुल चिंता न करें। हां, रात भर छत पर रह कर 'हर-हर महादेव' के नारे लगाते रहें। बेचारे की देह बुरी तरह कांप रही थी।"

अधेड़ उम्र का व्यक्ति जो मसनद का सहारा लिये बैठा था, आनन्द की बात पर तनकर बैठ गया। बोला, "ये लाला, सेठ और राय-साहब सब इसी लायक हैं। अफसरों के तलवे सहलाते हैं और गरीबों के आगे शेर बनते हैं। उस नुक्कड़ वाले सेठ को देखकर तो ऐसा गुस्सा आता है, ऐसा गुस्सा कि क्या कहूं। घर में कभी चुपड़ी रोटी तक नहीं खाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और अदालत का चपरासी आ जाता है तो उसके लिए पूरियां बनवाता है, बाजार से मिठाइयां मंगवाता है । कायर कहीं का !"

विश्वनाथ ने कहा, "आप ठीक कहते हैं, उपाध्यायजी । इन लोगों में दम नहीं है । और मजा यह कि सारे समाज को इन्होंने दूषित कर रक्खा है । ऊंच-नीच की ऐसी भावना पैदा कर दी है कि समाज का संगठन छिन्न-भिन्न हो गया है । इनकी आंखों के आगे लोग भूखों मरते हैं, पर इससे इन्हें क्या ! इन्हें तो अपनी तिजोरियां भरने की पड़ी है । बंगाल के लाखों आदमियों को भूखा मार डाला और देश में जो आज तबाही दिखाई देती है, वह इन्हीं लोगों के कारण है । एक बात मेरी समझ में नहीं आती । सरकार इन लोगों को क्यों बर्दाश्त करती है ? मैं कहता हूं, सरकार का नेतृत्व अब बदल जाना काहिए ।"

विश्वनाथ की इस बात पर आनन्द सहसा खिलखिला उठा । बोला, देखना, कुछ दिनों में क्या होता है । लीडरशिप अब बदले बिना नहीं रह सकती । दो दिन हमले का डर और दिखाया कि तीसरे दिन यह सेठ और रायसाहब और सब हम लोगों के बिना चूं भी नहीं करेंगे । आज रात में ही अधमरे न हो जायँ तो कहिए ।"

कोने में बैठा एक युवक इन लोगों की बात बड़े गौर से सुन रहा था । बोला, "पंडितजी, पैसे वालों को हैरानी हो यह तो समझ में आता है । लेकिन उनके साथ दूसरे बेकसूर आदमियों की भी जान सूखे, यह बड़ी बेजा बात है !"

"बेजा क्या है जी ?" उपाध्याय झटपट बोल उठे, "एक के पाप हजारों को ले डूबते हैं । क्या यह झूठ है, कालीचरन ?"

उपाध्याय और कुछ कहते कि इतने में जोर से 'हर-हर महादेव' के नारे लगे । साथ ही किसी ने आवाज लगाई, "सावधान !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपाध्याय ने कहा, "देखो, लोगों के मन के आतंक को हरा बनाये रखने में हरी भी अच्छा काम कर रहा है। उसके 'सावधान' कहने पर लोग थर-थरा जाते हैं। भगवत का काम भी पक्का रहा। तांगेवाले बीच-बीच में 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगा रहे हैं।"

आनन्द ने कहा, "पंडितजी, अभी दस-पांच पुलिस के आदमियों को और फोड़ना है। वे बीच-बीच में दो-चार फैर करते रहे तो दो दिन में देखिए, इन लोगों का क्या हाल होता है। कुछ पैसे और हाथ आ जायं तब यह काम आसान होगा।"

उपाध्याय मुसकरा उठे और देश का एक महान् नेता बनने का सुखद स्वप्न उनके मस्तिष्क में घूम गया। बोले, "जो आवश्यक बातें हैं, वे तो करनी ही होंगी, भाई। चालीस करोड़ लोगों का विश्वास पाना और उसे कायम रखना कोई हंसी-खेल नहीं है। क्यों भाई कालीचरन, है न ?"

कालीचरन, जो घुटा-घुटा-सा बैठा था, बोल पड़ा, "महाराज, मैं आपकी बात से सहमत नहीं हूं। लोगों में आतंक पैदा करके उनकी घबराहट और परेशानी का लाभ लेने से कहीं किसी का प्रभाव बढ़ा है, जो आप लोगों का बढ़ेगा ? मैं तो शुरू से ही कहता आया हूं कि जनता की सेवा करके, उसके लिए त्याग और बलिदान करके देश के कोटि-कोटि जनों के दिलों में घर बनाया जा सकता है, नहीं तो नहीं। काठ की हांडी बार-बार थोड़े ही चढ़ सकती है।"

कालीचरन की बात पर उपाध्याय और दूसरे लोग हंस पड़े, जैसे उसने कोई बड़ी मूर्खता की बात कह दी हो। हंसी थमी तो उपाध्याय बोले, "कालीबाबू, तुम सचमुच बड़े भोले हो। राजनीति का तुम्हें ज्ञान नहीं। लीडरशिप हमेशा लोगों की मूर्खता और अज्ञानता पर टिकती है। लोग बुद्धिमान और ज्ञानवान होंगे तो अपना रास्ता स्वयं निश्चित कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेंगे। मार्गदर्शक की उन्हें आवश्यकता नहीं होगी; लेकिन....(जरा मुसकरा कर) आज की तो बात ही दूसरी है। लोग कमजोर हैं और मूर्ख हैं। उनके दिल में थोड़ा डर पैदा कर दो और फिर देखो, वे तुम्हें देवता की तरह पूजते हैं या नहीं। क्यों भई आनन्द, मैं झूठ कहता हूं ?"

कालीचरन ने बात आगे नहीं बढ़ाई। उसने देख लिया कि उपाध्याय और उनके संगी-साथियों पर लीडरी का नशा सवार है। हजार कहो, वे सुनेंगे नहीं। इससे कुछ कहना बेकार है। वह थोड़ी देर और बैठकर चुपचाप चला आया।

सारे मुहल्ले की वह रात बड़ी मुसीबत में बीती। आधी रात के बाद थोड़ी देर के लिए बारिश आ गई और लोग घरों के भीतर चले गए; लेकिन पानी अच्छी तरह से थम भी न पाया कि फिर वही 'हर-हर महादेव'—'सतश्री अकाल !' के नारे लग गए। वह रात कैसी बीती, इसका स्मरण करके मुहल्ले वालों को आज भी रोमांच हो आता है।

और लोगों के साथ लाला कृपानारायण हैरान तो हुए, पर उन्हें मन-ही-मन बड़ा संतोष था कि उनकी वजह से उस रात सारे मुहल्ले की रक्षा हो गई।

× × ×

उपाध्याय के यहां से लौट कर बाकी रात कालीचरन की छटपटाती बीती। हमले का उसे डर नहीं था, कारण कि वह जानता था कि इस सारे आतंक के पीछे वास्तविकता कुछ भी नहीं है, कुछ लोगों की लीडर बनने की आकांक्षा है। मुहल्लेभर के लोगों के सामूहिक कण्ठ की आवाज जब उसके कानों में पहुंचती थी तो उसकी आत्मा तिलमिला उठती थी। उस आर्तनाद में एक गहरी टीस थी। कालीचरन का ध्यान तत्काल उपाध्याय जैसे महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की ओर दौड़ जाता था, जो सत्ता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाने के लिए जन-सेवा और स्वार्थ-त्याग में नहीं, जनता में निराधार सनसनी पैदा करके उस परेशानी से फायदा उठाने में विश्वास रखते हैं। उसका हृदय घृणा से भर उठता था। हाय रे स्वार्थलोलुप मानव ! तू जो न करे सो थोड़ा है !

यह सब सोचकर उसे बड़ी घबराहट हुई, सिर चक्कर खाने लगा। फिर उसने सोचा कि वह व्यर्थ ही हैरान होता है। दुनिया मूर्ख नहीं है। वह जिसे स्वीकार करती है, अपनाती है, उसे पहले ठोक बजा-कर परख लेती है। मुलम्मा कितने दिन सोने की तरह चल सकता है ! नहीं, उसे परेशान होने की जरूरत नहीं है।

अगले दिन सवेरे उठते ही उसने मुहल्लेभर का चक्कर लगाया और लोगों को समझाया कि इस तरह भयभीत होने की जरूरत नहीं है। हमला वमला कुछ भी नहीं होगा और हुआ भी तो हाथ-हाथ भर के डंडे लेकर छत पर बैठ आप लोग कर क्या लेंगे ? इससे शोर मचाने से फायदा क्या ? आप लोग चैन से सोइए।...."

कालीचरन के दिलासा देने पर भी दो और रातें उस मुहल्ले के लोगों की परेशानी में बीतीं; लेकिन जब उन्होंने देखा कि सरकारी मदद आ गई है और भय का विशेष कारण नहीं है तब वे धीरे-धीरे निश्चिंत होने लगे। उपाध्याय और उनके संगी-साथियों के लीडर बनने के सुनहले सपने धूल में मिल गए। उन्होंने बहुतेरी कोशिश की कि आतंक बना रहे; लेकिन सचमुच काठ की हांडी बार-बार नहीं चढ़ सकती थी। वे दिन निकल गए और अब तमाशा यह है कि सेठ कृपानारायण, रायसाहब और न जाने किस-किसके घर की औरतें उपाध्याय आदि को कोसती है और जो कोई आता है, उसी से कहती हैं कि नास जाय इन लोगों का ! लुटेरों की तरह घर से रुपये निकाल कर ले गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: २१ :

तमसो मा ज्योतिर्गमय

बा और महादेवभाई बैठे आपस में बातें कर रहे थे। मर्त्यलोक में अनेक वर्ष दोनों के साथ-साथ बीते थे। स्वातन्त्र्य संग्राम में दोनों ने साथ-साथ हिस्सा लिया था और जेल के बाहर और भीतर भी दोनों का कम साथ नहीं रहा था। आगाखां महल के कारावास में दोनों अचानक बापू से बिछुड़ कर यहां चले आए। महादेवभाई पहले आ गए थे, बा कुछ बाद में आईं। अब यहां देवपुरी में रहते हैं। दोनों का एक-दूसरे के प्रति अगाध स्नेह व ममता है। बापू की जितनी सेवा महादेवभाई ने की थी, उसे देखकर बा के हृदय में उनके लिए गहरा स्थान बन गया है। वह उन्हें बेटे की तरह प्यार करती हैं और महादेवभाई भी उन्हें इतना मानते हैं कि कोई बेटा भी अपनी मां को क्या मानेगा! दोनों पास-पास बैठते हैं तो पुरानी बातों की चर्चा होने लगती है। कभी जी बहुत ऊबता है तो गुरुदेव के पास चले जाते हैं। वह पास ही रहते हैं। एकान्त में उन्होंने एक कुटिया बनवा ली है। उसी शांति कुटीर में उनका अधिकांश समय कला की साधना में व्यतीत होता है। कभी-कभी तो अपनी साधना में वह इतने लीन हो जाते हैं कि कई-कई दिन तक कुटीर के बाहर नहीं आते। उनसे कुछ ही दूर पर महामना मालवीय, दीनबन्धु एण्डरूज, डाक्टर अंसारी तथा अन्य महापुरुष रहते हैं। जिस प्रकार अपने जीवनकाल में वे लोग मानव-जाति की सेवा करते थे, यहां आकर भी उनका वह सिल-सिला टूटा नहीं है। कहते हैं कि देवपुरी आराम की जगह है, मर्त्यलोक में काम करते-करते जब मनुज की काया थक जाती है तो वह उसे संजी-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वन प्रदान करने के लिए यहां चला आता है। लेकिन इन लोगों को क्षण-भर का भी चैन नहीं है।

आज बा किंचित अस्वस्थ-सी जान पड़ती थीं। उनका जी बहलाने के लिए महादेवभाई उन्हें अपने जीवन की कुछ घटनाएं सुना रहे थे। इतने में कहीं दूर पर उन्हें थोड़ा शोर सुनाई दिया। बात बीच में ही रुक गई। बा ने पूछा—"यह क्या है, महादेव ?"

महादेवभाई ने उस शोर की ओर कान लगाया; पर कुछ समझ में नहीं आया। बोले—"बा, कुछ पता नहीं चलता कि यह शोर किधर हो रहा है।"

वह बाहर निकल आए। देखते क्या हैं कि वरुण देव तीव्र गति से चले जा रहे हैं। महादेवभाई ने कहा, "महाराज, महाराज, जरा सुनिए।"

पर महाराज को जैसे अवकाश ही न हो! वह गए, वह गए! इसी प्रकार और बहुत से देव उधर से निकले। महादेवभाई ने उन्हें रोकना चाहा; लेकिन कोई भी नहीं रुका। महादेवभाई बड़े असमंजस में पड़े। आखिर माजरा क्या है!

बा ने फिर पुकारा, "महादेव, क्या बात है ?"

"कुछ भी पता नहीं चलता, बा !"

बा भी उठकर बाहर आ गईं। दोनों चारों ओर आंखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। शोर और गहरा होता जाता था। काफी समय इसी तरह निकल गया। इतने में एक ओर से बड़ी भीड़ आती दिखाई दी। फिर जो उन्होंने देखा उस पर उनकी आंखें सहज ही विश्वास न कर सकीं। देवगण के बीच बापू चले आ रहे थे। उन पर पुष्पों की वर्षा हो रही थी। देखते ही महादेवभाई के मुंह से निकला—"बापू !"

बा चिल्लाईं, "बापू !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दोनों दौड़कर आगे बढ़े और बापू के पैर छुए। बापू के चेहरे पर अपूर्व मुस्कराहट थी। उन्होंने महादेवभाई की पीठ थपथपाई और बा के कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "अच्छी है न ?"

बापू को निकट पाकर बा इतनी गद्‌गद् हो गई थीं कि उनके मुंह से बोल नहीं निकलता था। महादेवभाई भी बापू के अप्रत्याशित आगमन से कुछ ऐसे चकित हो गए थे कि चाहने पर भी उनका मुंह नहीं खुलता था।

बा और महादेवभाई के निवास पर आकर देवगण रुक गए और एक कण्ठ से बापू का जय-जयकार कर सब अपने-अपने निवासों को चले गए। देवपुरी में ऐसा भव्य स्वागत शायद ही किसी का हुआ हो।

सब के जाने पर बापू ने कहा, "महादेव, मेरे यों अचानक आ जाने पर तुम लोगों को अचम्भा हो रहा होगा। बात असल में यह हुई कि यहां से एक साथ बुलावा पहुंचा। तुम तो जानते हो कि प्रभु के बुलावे को मैं टाल नहीं सकता था। मैं यहां चला आया। लेकिन महादेव, अभी वहां बहुत काम करने को बाकी रह गया है, जिसे हमें यहां से पूरा करना है।"

महादेवभाई बोले, "बापू, यह लोक तो वहां से इतना दूर है कि देव-गण उधर के समाचार देते हैं तभी कुछ मालूम हो पाता है। एक दिन बहुत से फूल इकट्ठे किए जा रहे थे। तब मालूम हुआ कि हिंदुस्तान आजाद हो गया है और उसकी खुशी में देवगण पुष्पवर्षा करेंगे। बाद में फिर कुछ पता नहीं चला कि क्या हुआ, क्या नहीं।"

बापू ने कहा—"वह सब मैं तुम्हें सुनाऊंगा।"

बापू दूर से चलकर आए थे। कुछ थके-से लगते थे। बा गईं और उनके पैर धोने के लिए गरम पानी ले आईं। पैरे धोते-धोते उलहना देती हुई बोलीं—"तुमने आने की खबर भी नहीं दी।"

बापू ने मुस्कराते हुए कहा, "खबर क्या देता। एकदम चलने का तय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हुआ तो चला आया। क्यों तबियत तो ठीक रहती है न ? मुझे तेरी बराबर चिंता रहती थी।"

बा का जी भर आया। बोलीं, मैं अच्छी हूँ। तुम्हारे पास आते ही मेरी बीमारी भाग जाती है।"

फिर महादेवभाई की ओर मुड़कर बोलीं, "महादेव, जाओ, गुरुदेव, पंडितजी, एण्डरूज को कह आओ कि बापू आ गए हैं।"

बापू ने कहा, "नहीं बा, थोड़ी देर में मैं खुद ही उनके पास जाऊंगा।"

पैर धुलना पूरा नहीं हो पाया था कि सामने से गुरुदेव आते दिखाई दिए। उनके पीछे मालवीयजी, डा० अंसारी, दीनबन्धु, एण्जरूज और कई अन्य सज्जन थे। बापू उठे और उन्होंने दो पग आगे बढ़कर उन सब का स्वागत किया। गुरुदेव का रूप और वेशभूषा भव्य थी। उन्होंने बापू का आलिंगन किया। इस दिव्य मिलन के सुखद आनन्द का कौन अनुमान कर सकता है। उनके बाद बारी-बारी से सब ने बापू का आलिंगन किया। दीनबन्धु तो अपने बापू से ऐसे लिपट गए, मानों उन्हें छोड़ेंगे ही नहीं। अभिवादन के बाद सब लोग बैठ गए तो गुरुदेव ने बड़े प्रेमपूर्वक बापू की कुशल-क्षेम पूछी। बापू ने भी बड़े स्नेहभाव से गुरुदेव तथा अन्य सब के स्वास्थ्य के समाचार मालूम किए। थोड़ी देर तक इधर-उधर की की बातें होती रहीं। बापू थके थे। इसलिए वे लोग अधिक नहीं रुके और चले गए।

अगले दिन सब इकट्ठे हुए तो बापू ने भारत-भूमि का सब हाल उन्हें विस्तार से कह सुनाया। बोले—"बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता। भारत को एक-न-एक दिन आजाद होना ही था। उसके गुलामी के बन्धन टूट गए। लेकिन....।"

कहते-कहते बापू चुप हो गए। फिर बोले, "लेकिन सच्ची आजादी उसे अभी तक नहीं मिल पाई है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गुरुदेव का ध्यान वहां से हटकर थोड़ी देर के लिए स्वतन्त्र भारत के उज्वल चित्र देखने में लग गया था। कवि-कल्पना के आगे जाने किस सुनहले इतिहास के पृष्ठ खुल गए; लेकिन बापू की अंतिम बात से उनकी विचार-धारा टूट गई। उन्होंने ध्यान से बापू की ओर देखा। बापू की आंखों में वह उल्लास नहीं था जो वर्षों की कठोर साधना के बाद अपने देश की बन्धन-मुक्ति पर होना चाहिए था। बल्कि गुरुदेव की सूक्ष्म दृष्टि ने देखा कि उनके चेहरे पर विषाद की एक हल्की रेखा उभर आई है। उन्होंने सुना, बापू कह रहे थे, "मेरी मनोकामना उस दिन पूरी होगी, जिस दिन भारत ही नहीं, समूची मानव-जाति एक कुटुम्ब बन जायगी, जिसमें एक का दुःख-दर्द सब का दुःख-दर्द होगा और घृणा की जगह प्रेम, हिंसा की जगह अहिंसा और असत्य की जगह सत्य की प्रतिष्ठा होगी। मैं जानता हू कि यह काम कठिन है और जिस अनन्त धैर्य से हमने आजादी की लड़ाई लड़ी थी उससे कहीं अधिक धैर्य, साधना और त्याग-तपस्या की इसके लिए आवश्यकता होगी; लेकिन जब तक सारी दुनिया में ऐसे रामराज्य की स्थापना नहीं होती मुझे चैन मिलनेवाला नहीं है।"

सब मन्त्रमुग्ध-से बापू की बात सुन रहे थे। मालवीयजी बोले, "महात्माजी, मानव दुर्बलताओं का पुतला है। तभी तो हमारे शास्त्र-कारों ने बार-बार एक ही बात पर जोर दिया है कि अपनी कमजोरियों को जीतो।"

"लेकिन", बापू ने कहा, "मानव में कमजोरियां हैं तो गुण भी हैं। गुणों के कारण ही उसे मानव कहा गया है। हम उसके सुन्दर रूप को ही देखें।"

गुरुदेव की आंखें चमक उठीं। अपने मधुर संगीत की ध्वनि से उन्होंने सदा मानव के सत्य, शिव और सुन्दर रूप को ही मुखरित किया था और अपनी पावन भूमि की गरिमा को ही वाणी प्रदान की थी। उनकी सौम्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दृष्टि ऊपर उठी । बोले, "मेरी वीणा के तारों से सदा की भांति मानव-जाति के लिए मंगल-गान ही फूटेगा ।"

"ठीक है," बापू ने कहा, "यही हमारे लिए और सबके लिए जरूरी है । संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहां घृणा से प्रेम की मात्रा अधिक है । धोखेबाजी और जोर-जब्र तो बीमारियां हैं, सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य हैं । यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है ।"

मालवीयजी बड़े ध्यान से बापू की बात सुन रहे थे । बोले, "आपकी बात सत्य है ।"

बापू ने आगे कहा, "अगर आदमी जान ले कि अपना सबसे बड़ा दुश्मन वह स्वयं ही है तो दुनिया का रास्ता बहुत सरल हो जाय । वह शत्रु को बाहर खोजता है और भटकता है । इसीसे सारी कठिनाइयां पैदा होती हैं । वह जबतक अपने को नहीं कसेगा, अपने जीवन को शुद्ध नहीं बनावेगा, तबतक उसे शांति नहीं मिलेगी ।"

डा० अंसारी ने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा, "पाक इंसान के अन्दर खुदा का नूर चमकता है । जो अपनी जिंदगी को पाक बना लेता है, उसके लिए कोई बेगाना नहीं होता ।"

बापू बोले, "मुझे पक्का भरोसा है कि आज जो अंधेरा-ही-अंधेरा दीख पड़ता है उसीमें से एक दिन प्रकाश की किरण फूटेगी ।"

× × ×

देवपुरी में रहते-रहते बापू को काफी समय हो गया है । अपने जीवन में उन्हें अनेक बार अकेला चलना पड़ा था, लेकिन अब तो उनके बहुत-से संगी-साथी हैं, जिनकी नित्य-प्रति एक ही प्रार्थना रहती है—हे प्रभु, हमें अंधकार से उजाले में ले जा ।

और इसी के लिए वे सब जी-जान से प्रयत्नशील हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: २२ :

काश्मीरी लोई

काश्मीर के शाल और लोइयां मशहूर हैं। दूर-दूर तक उनका नाम है। रंग एक-से-एक बढ़िया और मुलायम इतनी कि कोई दूसरा कपड़ा उनके सामने क्या ठहरेगा! चलाऊ भी खूब होती हैं। जरा सावधानी से रक्खो तो बरसों चल जाती हैं।

सो अब की धर्मेन्द्र श्रीनगर गया तो तंगदस्ती में भी एक लोई खरीदता लाया। हाथ में पैसे कम थे, फिर भी उसने सोचा कि कौन रोज-रोज इतनी दूर आने बैठता है, और फिर चीज एक बार आ गई तो आ ही जाती है। पैसा तो रुक कर रहने से रहा। इससे धर्मेन्द्र ने सोचा-विचारी अधिक नहीं की और लोई आ गई।

घर पर जिसने देखी उसी ने पसन्द की। किसी को रंग अच्छा लगा तो किसी को उसका कपड़ा। राजरानी को भी वह बहुत पसन्द आई। हाथ से टटोलती हुई बोली—"वैसे चीजें तुम योंही उठाया लाया करते हो; लेकिन यह तो सचमुच बहुत अच्छी लाए हो। इसे खोना नहीं।"

शाम का समय था। कमरे से सटे वरांडे में पाँच वरस का सुधीर खेल रहा था। उसके हाथ में रबर की चिड़िया थी। उसके पेट पर जोर से हाथ मारता और वह 'चीं-चीं' कर उठती तो बालक खिल-खिलाकर हँस पड़ता।

राजरानी ने कहा, "मेरी बात सुन ली न? इस लोई को जरा सँभाल कर रखना।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धर्मेन्द्र ने सुनने को पत्नी की बात सुन ली; लेकिन वह क्या जानता नहीं है कि वाकई वह बहुत लापरवाह है। राजरानी भींकते-भींकते परेशान हो गई है, पर उस भलेआदमी पर कोई असर ही नहीं होता। जीवन में व्यवस्था उससे कभी आई ही नहीं। दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं। एक तो वे जो भौतिक वस्तुओं में उलझ कर चलते हैं, दूसरे वे जिनकी आत्मा इतनी स्वतंत्र होती है कि दुनिया की किसी चीज का बंधन स्वीकार नहीं करती। लोग उन्हें दुनियादारी से परे मानते हैं और असफल कहते हैं। धर्मेन्द्र ऐसे ही लोगों में से है। दीन-दुनिया की उसे कोई फिकर नहीं। वह तो जब से राजरानी आई है तब से वक्त पर खाना जाने कैसे खा लेने लगा है। पर एक बात है। अपनी इस अस्त-व्यस्तता के कारण उसमें हीनता के भाव नहीं आने पाए। अनेक बार शिष्ट-समुदाय के बीच वह कमीज में बटनों की जगह आलपीन लगाए मजे से बैठा पाया गया है। लोई न खोने की सावधानी रखने पर राजरानी का इतना आग्रह देख कर वह हँस पड़ा। बोला—"बहुत अच्छा जनाब, इस लोई की खातिर अबतक की जिन्दगी को बदलने की कोशिश करूँगा।"

धर्मेन्द्र की इस बात पर राजरानी खीज उठी। वह कुछ कहती कि इतने में सुधीर जोर से चीख पड़ा। खेल-खेल में उसने रबर की चिड़िया को दूर फेंका तो टामी ने उसे लपक कर मुंह में ले लिया और लगा पैरों में दबा कर झकझोरने। राजरानी झट से उठी और कुत्ते से छुड़ा कर चिड़िया सुधीर के हाथ में थमा दी। फिर अपने काम में लग गई। लोई के बारे में बात यहीं समाप्त हो गई।

× × ×

कुछ-कुछ जाड़े शुरू हो गए थे। अचानक धर्मेन्द्र को एक शादी में जाना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पड़ा । टालना तो उसने बहुत चाहा; पर उसके बहुत ही नजदीक के सम्बन्धी की शादी थी और जब आग्रह बहुत हुआ तो उसे जाने का निश्चय करना ही पड़ा ।

ताँगे में सामान रख कर चलने को हुआ तो सहसा उसे लोई की याद आ गई। राजरानी को पुकार कर उसने कहा, "लोई तुमने रख दी है न?"

राजरानी ने कहा, "अभी इतना जाड़ा नहीं है । मोटी चादर से काम चल जायगा।"

धर्मेन्द्र ने झुंझलाते हुए कहा, "लोई क्या अजायबघर में रखने के लिए है? गाड़ी का वक्त हो गया है। जल्दी लाओ। गाड़ी निकल गई तो बहुत परेशानी होगी।"

"लोई को खो-खा आओगे तब तुम्हें चैन पड़ेगा!" कह कर राजरानी अन्दर गई और लोई लाकर उसने धर्मेन्द्र के हाथ में थमा दी।

धर्मेन्द्र स्टेशन पहुँचा तो गाड़ी जा चुकी थी। वास्तव में अपराध उतना राजरानी का नहीं था जितना कि धर्मेन्द्र की घड़ी का। दस बजकर सात मिनट पर रुकी सो ऐसी कि अब ग्यारह बज कर बीस मिनट पर भी वही समय दे रही थी। धर्मेन्द्र को बड़ी झुंझलाहट हुई। गाड़ी की सूचना वह संबंधी को दे चुका था। लेकिन खैर, दूसरी गाड़ी दो घंटे बाद ही जाती थी। दो घंटे के लिए घर क्या लौटना? यह सोच धर्मेन्द्र वहीं पेटी और बिस्तर रख कर बेंच पर बैठ गया। बैठे-बैठे कोई दसेक मिनिट में उसे थोड़ा आलस आने लगा और वह लेट गया। लोई उसने पैरों पर डाल ली।

रात बढ़ती जा रही थी और साथ ही स्टेशन पर सन्नाटा भी गहरा होता जा रहा था। यात्री सोने लगे थे । एक चायवाला चाय का बर्तन लिए इधर-से-उधर चक्कर काट रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धर्मेन्द्र बेंच पर लेटा बहुत-सी बातें सोचता रहा। थोड़ी देर में उसकी आँख लग गई।

आंख लगी तो ऐसी कि गाड़ी आ गई और वह सोता ही रहा। रात की उस गाड़ी से जाने वाले कम ही लोग थे। उन्होंने इधर-उधर घूम कर अपने लिए जगह देखी और अंदर जा कर बैठ गए। धर्मेन्द्रसाहब अब भी सो रहे थे। आँख खुली तो गार्ड सीटी दे चुका था। वह हड़बड़ा कर उठा और एक हाथ में पेटी और दूसरे में बिस्तर ले कर तेजी से दौड़ा। तीसरे दर्जे का डब्बा कुछ ही दूरी पर था। वह सपाटे से उसमें घुस गया। अंदर पहुंचते ही गाड़ी रेंगने लगी।

डब्बे में जगह काफी थी; लेकिन लोगों ने बिस्तर लगा रक्खे थे और पैर फैलाए सो रहे थे। धर्मेन्द्र बिस्तर पर बैठ गया। सामने की सीट पर एक पंजाबिन बैठी थी। उसकी गोद में पड़ा बच्चा बुरी तरह से रो रहा था। चीखता था, चिल्लाता था। स्त्री परेशान थी। जितना उसे बहलाती, उतने ही जोर से वह रोता। दूध भी नहीं पीता था। शायद बीमार था। लोई से वह उसके पैर ढकती कि वह लात मार कर लोई को अलग कर देता।

धर्मेन्द्र ने स्त्री की परेशानी देखी। अन्य यात्री भी देख रहे थे। अब की स्त्री ने लोई से बच्चे को एकदम ढक दिया। फिर भी बच्चे का रोना थमा नहीं। लोई के भीतर से उसकी आवाज बराबर सुनाई दे रही थी।

धर्मेन्द्र एकटक उधर देखता रहा। देखते-देखते उस ध्यान आया अपनी लोई का। वह निश्चिंत था कि सामान उसका सब सुरक्षित है। देखा तो बिस्तर था, पेटी थी, लेकिन लोई गायब। उसने उठकर बिस्तर के इधर-उधर देखा और तब उसे ध्यान आया कि जल्दी में वह बेंच पर ही रह गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काले अंधकार को चीरती गाड़ी तेजी से आगे बढ़ रही थी। यात्री ऊँघ रहे थे। स्टेशन पीछे छूट गया था। धर्मेन्द्र अब क्या कर सकता था? वह फ़िर बिस्तर पर बैठ गया और पेटी का थोड़ा सहारा लेकर खिड़की के बाहर देखने लगा और बहुत देर तक देखता रहा। उसे दीखा कि दिल्ली का स्टेशन बिजली की रोशनी में जगमगा रहा है और वह पड़ी है बेंच पर उसकी लोई। आधी बेंच पर है और आधी नीचे लटक रही है। बिजली के प्रकाश में उसका रंग कैसा प्यारा लग रहा है।

पर यह क्या? धर्मेन्द्र ने देखा कि एक आदमी उसी बेंच पर आ बैठा है। उसने उसे पहचानना चाहा, पर पहचान न सका। उसका चेहरा कुछ आड़ में पड़ता था। पर इतना तो उसने देख ही लिया कि उसके बाल बड़े हैं। शरीर पर फटी-सी पतली कमीज है और ठण्ड से वह काँप रहा है। देखने में भिखारी-जैसा लगता है।

धर्मेन्द्र को उस पर दया आ गई। जाड़े के मारे बेचारा सिकुड़ रहा था। तभी धर्मेन्द्र ने देखा कि वह ललचाई आँखों से लोई की ओर देख रहा है। धर्मेन्द्र सुन्न पड़ गया। देखते-देखते उस दीन नर ने लोई का एक सिरा खींच कर अपनी सूखी टांगों पर कर लिया। बेबस धर्मेन्द्र क्या करे? अब की थोड़ी और खींची कि पूरी लोई उसके तन पर आ गई। क्षण भर वह और रुका। फिर लोई लेकर नौ दो ग्यारह हो गया।

धर्मेन्द्र के हृदय की गति मानों रुक जायगी। बाहर से उसने निगाह हटा कर डब्बे में इधर-उधर देखा। बिजली की रोशनी में सामने की तख्ती पर उसने पढ़ा—'गाड़ी ठहराने के लिए इसे खींचो। नाहक खींचने पर पचास रुपया जुरमाना।'

धर्मेन्द्र ने दो बार उसे पढ़ा। तो जंजीर खींच दूं? लेकिन उससे फायदा क्या होगा। स्टेशन काफी पीछे रह गया है। नहीं जी, जंजीर खींचने से कुछ नहीं होगा। वह फिर बाहर देखने लगा। उसे दीखा कि वही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नर-कंकाल लोई में अपने जीर्ण शरीर को लपेटे चला जा रहा है, चला जा रहा है। धर्मेन्द्र के जी में आई कि उसे रोक कर कहे कि भाई, यह लोई मेरी है। कहाँ लिए जाते हो? लाओ, मुझे दो। लेकिन उस गरीब का फिर क्या होगा? बेचारा जाड़े के मारे मर जायगा।

धर्मेन्द्र की निगाह हट कर फिर एक बार खतरे की जंजीर पर गई। मन-ही-मन उसने दोहराया—जुरमाना पचास रुपया!

निगाह उधर से हटी तो उसने देखा कि वह पंजाबिन लोई से अपने आधे तन को ढँके लेटी है और उसी लोई में उसका सिसकता बालक एक ओर को पड़ा है। धर्मेन्द्र को वह नारी कुछ परिचित-सी लगी। जरा ध्यान से देखा तो वह विस्मय से काँप उठा। अरे, यह तो राजरानी है और पास सोता बालक है सुधीर। धर्मेन्द्र ने आँखें मलीं। फिर भी उसे लगा कि वे राजरानी और सुधीर ही हैं और जिस लोई को ओढ़े वे सो रहे हैं वह वही हैं, जिसे दीन भिखारी अभी ले जाता मालूम हुआ था। धर्मेन्द्र को शान्ति मिली।

उसे दीखा कि राजरानी कुछ-कुछ मुस्करा रही है, जैसे कहती हो—"क्यों, लोई खोकर ही माने? मैंने कहा था कि तुम्हारे पास वह टिकेगी नहीं। मेरी बात सच निकली न?"

धर्मेन्द्र कहने को हुआ कि लोई खोई कहाँ है? तुम्हारे पास है तो? इतने में गाड़ी की गति धीमी पड़ने लगी। धर्मेन्द्र को चेत हुआ। राजरानी और सुधीर वहाँ से गायब हो गए थे और उनके साथ लोई भी।

अलीगढ़ स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो धर्मेन्द्र ने उतर कर तत्काल दिल्ली को लोई के बारे में फोन कराया; लेकिन लोई न मिलनी थी, न मिली।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लौटने पर राजरानी ने जब जवाब तलब किया तो धर्मेन्द्र ने कह दिया कि जो चीज चली गई, उसके लिए परेशान क्या होना। और फिर जो कोई ले गया होगा, उसकी जरूरत हमसे ज्यादा होगी और वह हमसे कहीं अधिक सँभाल कर रक्खेगा।

राजरानी ने समझ लिया कि पति का रोग लाइलाज है। वह मुंह बना कर चुप रह गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

: २३ :

महल की आज़ादी

कल की उच्छृङ्खल, कोकिल के समान कूकने और केकी के समान नृत्य करने वाली वह वनवासिन, महाराज के अनुनय और स्नेह को स्वीकार कर अपने पूर्वजों की कुटिया को छोड़ राज-प्रासाद में आ गई। महल में प्रवेश करते ही महाराज ने कहा—"सुनन्दा, अब तुम सुनन्दा नहीं, महारानी हो, और ये जो महल हैं, सब तुम्हारे हैं। इनमें तुम पूर्ण स्वतंत्र हो। जो कुछ आज्ञा करोगी, नौकर-चाकर तुरन्त उसका पालन करेंगे।"

कृतज्ञ-भाव से सुनन्दा ने सिर झुका लिया।

चार कदम और बढ़ने पर महाराज ने कहा, "महारानी, यहाँ किसी बात का कष्ट मत पाना। लेकिन इस बात का ध्यान तो तुम रक्खोगी ही कि महल महल है और जब सुनन्दा से तुम महारानी के पद पर आसीन हुई हो तो कुछ दायित्व भी तुम्हारे सिर आ गया है।"

सुनन्दा महाराज की बात का मर्म नहीं समझी। फिर भी जो कुछ उन्होंने कहा, उसमें मिठास था और उसके हृदय को अच्छा लगा। विशाल भवन, उच्च अट्टालिकाएँ, संगमरमर के चिकने दूध-से फर्श! यह सब देख कर वन की वह देवी चकित रह गई। अपने जीवन में वैभव के ऐसे ठाट-बाट उसने कभी न देखे थे। इससे जो कुछ उसके नेत्रों के सम्मुख आता था, उसे कौतूहलजनक और रसदायक प्रतीत होता था। बगल के कमरे में एक शेर खड़ा देख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सुनन्दा दौड़ी और उसकी गर्दन में अपनी बाँहें डाल कर उसके मुख को चूमने लगी।

महाराज ने कहा--"यह जो नाहर अब इतना सुन्दर दीख पड़ता है, इसकी भयानकता वन में देखते ही बनती थी। पारसाल जब शिकार के लिए आसाम के जंगलों में गया था तब यह हाथ लगा था। जंगल में इसका स्वच्छन्द विचरण करना एक खासी चीज रही होगी।"

× × ×

उस दिन से सुनन्दा महल में रहने लगी। महल का वैभव उसे मीठा रस देता था। उँगली के संकेत पर जब वह अनेक दास-दासियों को नाचते देखती तो गर्व से उसकी छाती फूल आती। वन में अपने जीवन को चलाने के लिए उसे जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता था। यहाँ हरेक चीज सहज सुलभ थी। आज्ञा देने भर की देर होती थी। भोजन, वस्त्र, आभूषण और आमोद-प्रमोद की उत्तमोत्तम वस्तुएँ, सभी कुछ उसे उपलब्ध था। महारानी सुनन्दा के दिन आनन्दपूर्वक बीतने लगे।

लेकिन कुछ दिन बीतते-बीतते सुनन्दा को वह आनन्द कभी-कभी खटकने लगा। कोयल की कूक जब उसके कानों में आती तो वह स्वयं उसके स्वर में स्वर मिला कर चहकना चाहती थी। जब कोई मयूर अट्टालिका पर अपने पंखों को फैलाकर नाचता तो सुनन्दा स्वयं हाथ-पैर फैला कर नाचने को उत्सुक होती; लेकिन तभी महल का समूचा वातावरण मानों उससे कहता कि ओ सुनन्दा, तू अब वन में रहने वाली सुनन्दा नहीं है। तू अब महारानी है और महारानी को चहकना और नाचना क्या शोभा देता है? महल के भीतर महारानी के गौरव और मान-मर्यादा की रक्षा करनी होगी।

कभी-कभी सुनन्दा के हृदय में महाराज से भेंट करने की इच्छा होती। वह चाहती कि तुरन्त दौड़ कर उनके पास पहुँच जाय; लेकिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसा करना सम्भव नहीं था। महाराज के महलों में जाने के लिए उसे पहले अनुमति प्राप्त करनी होती थी। सुनन्दा मन मार कर रह जाती थी।

एक रोज उसने महाराज से विनय की—"महाराज, मेरे लिए आप कोई भी बन्धन मत रखिए। वह मुझे सहन नहीं होता, दुखदाई होता है। प्रजा के लोग आप तक न पहुँच सकें तो न सही, मेरे लिए कोई रोक-टोक नहीं होनी चाहिए।"

महाराज ने कहा—"महारानी, इतने बड़े राज्य के संचालन का भार मेरे ऊपर है। हरेक मुझ तक हर घड़ी पहुँचना चाहे तो काम कैसे चलेगा?"

सुनन्दा की आँखें छलछला आईं। बोली—"महाराज, सुनन्दा को तो बन्धन-मुक्त ही रखिए।"

महाराज चुप हो गए। लेकिन उनकी भाव-भंगिमा से स्पष्ट था कि सुनन्दा की प्रार्थना स्वीकार करने में वे असमर्थ हैं।

× × ×

अब सुनन्दा को महल का वैभव फीका लगने लगा। अबतक जो उसे रस देता था, वही अब कटु लगने लगा। महल की अट्टालिका से वह बहुधा देखती कि महल के सिंहद्वार पर अनेक दीन जन खड़े हैं। रो रहे हैं, पर कोई उनकी बात नहीं सुनता। उलटे पहरेदार उन्हें फटकारकर वहाँ से भगा देता है। यह देखकर सुनन्दा का हृदय चीत्कार कर उठता। कभी कोई दुखिया गिड़गिड़ाकर कहती, "अन्नदाता, हमारी बात तो सुन लो।" इसके बाद ही पहरेदार का कर्कश स्वर सुनन्दा को सुनाई देता। वह कलेजा मसोसकर रह जाती। महाराज को इस सबका क्या पता कि सुनन्दा के दिल पर क्या बीत रही है। वह महल के आमोद-कक्ष में सुरा में लिप्त होते। आरंभ में सुनन्दा नहीं जानती थी कि यह सब क्या है; पर धीरे-धीरे सारी चीज उसके सामने खुलती गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस प्रकार दिन बीतने लगे और सुनन्दा मर-मर कर जीने लगी। महाराज राज्य-कार्य और उससे अधिक अपने भोग-विलास में लिप्त रहते थे। दस-पाँच दिन में कभी अवकाश होता तो थोड़ी बहुत देर के लिए सुनन्दा से मिल लेते।

और सुनन्दा सोचती, आखिर महल की आजादी का अर्थ क्या है ? चिड़िया के पंख काट कर उससे कह दो कि जा, तू आजाद है तो क्या वह उड़ सकेगी ? क्या पैरों में बेड़ियों को लेकर कोई दौड़ सकेगा ? नहीं, सुनन्दा कोई भी बन्धन नहीं स्वीकार कर सकेगी। उसे महल नहीं चाहिए। वह आजादी चाहती है और वन पसन्द करती है, जहाँ आजादी है। सोचती तो वह बहुत कुछ थी और चाहती भी थी कि महाराज से सब बातें साफ-साफ कह दे; किन्तु महाराज के सामने उसका मुँह न खुलता था। खुलता भी तो क्या ? महाराज को उसकी बात सुनने और मानने का अवकाश ही कहाँ था ?

महाराज जब कभी आते कहते, "महारानी, कोई कष्ट तो नहीं है ?" तो अनायास भाव से वह केवल इतना ही कह पाती, "जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं है। सब आपकी कृपा है।"

महाराज और उसके बीच बड़ा अन्तर आ गया। महाराज जब चले जाते तो विह्वल सुनन्दा शयनागार में जाकर तकिये में मुँह छिपा-कर खूब रोती।

सुनन्दा को जब दुख बहुत सताने लगा, उसकी आत्मा बहुत फड़फड़ाने लगी तो एक दिन उसे सूझा क्या कि सब लोगों की निगाह बचाकर वह थोड़ी देर के लिए महल से बाहर हो गई। यह उसकी अनधिकार चेष्टा थी, क्योंकि राज-परम्परा के अनुसार महारानी के लिए यह कैसे उचित हो सकता था कि वह इस प्रकार सार्वजनिक नेत्रों को सुलभ हो। लेकिन सुनन्दा ने उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चिंता नहीं की । उसके अंतर की तड़पन इतनी बेकाबू हो गई थी ।

सारे नगर में शोर मच गया । चारों ओर भांति-भांति की चर्चा होने लगी । मन्त्रियों ने बात महाराज तक पहुँचाई और जब सुनन्दा लौटकर आई तो महाराज ने रोष के साथ पूछा—"महारानी, यह क्या ?"

सुनन्दा चुप ।

महाराज ने और अधिक उत्तेजित होकर कहा—"राजा की मर्यादा को नष्ट करने का अधिकार किसी को भी नहीं है । राजा और रानी प्रजा के लिए ईश्वर के समान हैं और प्रजा और उनके बीच वही संबंध है, जो एक साधारण व्यक्ति और ईश्वर के बीच होता है । महारानी, तुमने राज-महल के गौरव को बट्टा लगाने का काम किया । मैं उसका कारण जान सकता हूँ ?"

महारानी चुप ।

"महारानी !"

सुनन्दा बोली—"मैं दीन हूं । मुझे क्षमा कीजिए ।"

महाराज ने कहा, "तुम्हारा यह पहला ही अपराध है । इसलिए क्षम्य है । आइन्दा ऐसा मत करना ।"

"जो आज्ञा, महाराज !"

× × ×

उक्त घटना के बाद से तो सुनन्दा का जीवन एकदम भार हो उठा । उसके शरीर को विभूषित करने वाले वस्त्र और आभूषण उसका उपहास करने लगे । सुनन्दा दिन-रात इसी चिंता में व्यग्र रहने लगी कि वह इस स्थिति से उबरने के लिए क्या करे ?

एक दिन महाराज जंगल में आखेट के लिए गए और कृपापूर्वक सुनन्दा को भी साथ लेते गए । वन में पैर रखना था कि सुनन्दा को अपने शैशव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की बहुत सी स्मृतियां ताजी हो गईं। वन की उन्मुक्त वायु में इतने दिन बाद सांस लेकर उसे बड़ा चैन पड़ा। बचपन के साथी-संगी, नदी-नाले, पहाड़ और सघन वृक्ष देखकर उसका जी प्रफुल्लित हो उठा। उसके चेहरे पर एक नवीन आभा झलक आई।

महाराज ने कहा, "महारानी, आज हम शेर का शिकार करेंगे। तुम मेरे पास ही मचान पर बैठना।" और सुनन्दा की पीठ पर हाथ फेर कर बोले, "शेर मारोगी ?"

सुनन्दा ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं तो देखने के लिए आई हूं। महाराज, मुझे क्षमा कीजिए।"

घने जंगल में एक ऊँची-सी जगह पर पहले से ही मचान तैयार थे। कुछ पर राजकर्मचारी बैठे और एक पर महाराज और महारानी। राज-कर्मचारियों को आज्ञा थी कि वे किसी भी वन्य पशु पर गोली न चलाएं।

हांका हुआ और थोड़ी देर में एक नाहर दहाड़ता हुआ महाराज के मचान से थोड़ी दूर होकर निकला। महाराज ने गोली दागी। एक. . . . दो. . -और शेर घोर गर्जन कर कुछ कदम आगे बढ़ा और ढेर हो गया।

सुनन्दा को लगा, एक गोली उसके हृदय में भी आकर लगी है। महा-राज ने अपने पराक्रम पर इठलाते हुए सुनन्दा की ओर देखा। सुनन्दा ने आँखें नीची कर लीं।

थोड़ी देर में सब राजकर्मचारी वहां एकत्र हुए। एक स्वर में सबने महाराज का जय-घोष किया और उन्हें बधाई दी। महामन्त्री ने कहा कि महाराज, ऐसा पुख्ता जानवर मैंने कभी नहीं देखा। अन्य मन्त्रियों ने भी कुछ ऐसे ही शब्दों में महाराज का अभिनन्दन किया; लेकिन सुनन्दा चुप थी। जय-घोष का प्रत्येक शब्द और मन्त्रियों का स्तुति-गान उसके हृदय को बेधे डाल रहा था। वन उसका घर है और वन्य जन्तु उसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सखा और सहोदर हैं। उनका विनाश ! सुनन्दा का सिर चक्कर खाने लगा। उसके अन्दर से किसी ने कहा—"दुनिया महाराज की विजय पर भले ही हर्ष प्रकट करे, सुनन्दा उसमें भाग नहीं ले सकती। अपने बन्धु की हत्या पर क्या कभी कोई हंसा है, जो सुनन्दा हंसेगी ?"

सुनन्दा अन्यमनस्क-सी खड़ी रही। वह सोचती थी कि राजा प्रजा का पालक है। क्या वन के जीव उसकी प्रजा नहीं है ? और क्या राजा का उन जीवों की रक्षा करना उतना ही कर्तव्य नहीं है, जितना कि मानव-प्राणियों की रक्षा करना।

मन्त्रियों के नारों से सारा वन गूंज उठा।

× × ×

नगर में महाराज के इस अपूर्व पराक्रम के कारण खुशियाँ मनाई गईं। महलों में मंगल-सूचक बन्दनवार बँधे तथा जगह-जगह पर महाराज के स्तुति-गान होने लगे। राज-प्रासाद जगमगा उठा। कहीं नृत्य हो रहा था तो कहीं बाजे बज रहे थे। लेकिन सुनन्दा उस सब में भाग नहीं ले सकी। बार-बार उसके मन में एक ही प्रश्न उठता था—"आजादी का अर्थ क्या इसी बात तक सीमित है कि मैं जैसा चाहूँ खा सकूँ, जैसा चाहूँ पहन सकूँ। बस ? या जितना खर्च करना चाहूँ कर सकूँ ! आजादी क्या इसी को कहते हैं ?"

उसके अन्दर से उत्तर मिलता, "आजादी ? सच्ची आजादी बंधन नहीं मानती, ऐसे तो हर्गिज नहीं जैसे कि तेरे ऊपर हैं। सुनन्दा, राजमहल तेरे लिए उपयुक्त नहीं है। वन की चिड़िया पिंजड़े में नहीं, वन में ही प्रसन्न रह सकती है। पिंजड़ा चाहे सोने का हो, फिर भी पिंजड़ा ही है और चिड़िया के लिए पिंजड़े का सीमित और बधन-युक्त जीवन दुखदाई होता है। बावली सुनन्दा, तू यहां कहाँ आ फंसी है !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन सब विचारों के साथ सुनन्दा का ध्यान वन की अपनी कुटिया की ओर चला जाता । अब वह समझी कि आजादी क्या होती है। वन का पंछी महल में नहीं रह सकता ।

एक ओर सुनन्दा के मनमें इस प्रकार संघर्ष चल रहा था, दूसरी ओर महल में आमोद-प्रमोद अनवरत चल रहे थे। रात ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी, उनका रंग और गहरा होता जाता था। महाराज और राज-कर्मचारी मदिरा के प्रभाव में मस्त होकर झूम रहे थे। इसी महल के एक खण्ड में अभागिन सुनन्दा का हृदय रो रहा था।

सुनन्दा ने अपने कर्तव्य का निश्चय किया तब काफी रात हो चुकी थी। वह उठी। सारे आभूषण एक-एक करके उसने उतारे और फर्श पर निर्मम भाव से पटक दिए। रेशमी साड़ी उतार डाली और उसकी जगह एक मामूली-सी धोती पहन कर चुपचाप वहां से चल दी। उत्सव का सिलसिला अब भी जारी था। उस ओर जरा भी ध्यान न देकर पहरेदार की निगाह बचाकर सुनन्दा महल के बाहर हो गई।

× × ×

रात्रि के अंतिम प्रहर में जब उत्सव का रंग हल्का पड़ा और महाराज नशे में चूर सुनन्दा के महल में आए तो देखते क्या हैं कि कमरे में रोशनी हो रही है और सुनन्दा के वस्त्र और आभूषण इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। महाराज का नशा उड़ गया। दासियाँ बुलाईं, लेकिन उन्हें महारानी का कुछ भी पता न था। उन्होंने बताया कि कोई दस बजे महारानी ने उनसे कहा था कि उनकी दरकार नहीं है, वे चली जायँ।

महाराज ने और उनके नौकर-चाकरों ने महल का कोना-कोना छान डाला। सुनन्दा का कहीं पता न चला।

अगले दिन महाराज कुछ कर्मचारियों को साथ लेकर वन में सुनन्दा की खोज में गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिजली की भाँति सारे नगर में खबर फैल गई कि महारानी महल से भाग गई। कुछ लोगों ने कहा कि उनकी आँख किसी से लड़ गई होगी। किसी ने कहा महाराज न जाने किसे पकड़ लाए थे और उसे महारानी बना लिया था। वह क्या उसके लायक थी? लेकिन महाराज के विशाल राज्य में क्या एक भी व्यक्ति ऐसा था, जो सुनन्दा का वास्तविक रूप पहचानता हो? स्वयं महाराज भी उसे नहीं पहचान पाए थे। वे नहीं जानते थे कि महल की आज़ादी सुनन्दा के लिए ठीक वैसी ही है, जैसी कि एक बन्दी बन्दी-गृह में पाता है।

महाराज ने सुनन्दा को खोजने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु निष्फल। सुनन्दा अपने घर पहुँच चुकी थी—उस घर में जहाँ उसके कोकिल के समान कूकने और केकी के समान नृत्य करने पर रोक न हो सकती थी।

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

SPS
891.433 Y 1 M
18610

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

H83.1
Digitized by eGangotri
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE